The Opinion V.10, N. 20 J-D 2021 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal

डॉ0 भीमराव अम्बेडकर एवं सामाजिक समरसता

प्रो0 रेखा
समाजशास्त्र विभाग
म0गां0 काशी विद्यापीठ,
वाराणसी–221002

आज हम चर्चा करने वाले हैं उस महान व्यक्तित्व की जिनके कार्यों और जिनकी योग्यता की चर्चा भारत में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व समुदाय में होती है। जिनके कार्यों के चमक से पूरा विश्व प्रकाशमय हो चुका है और हो रहा है। जिनकी योग्यता की चमक ही है कि आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी ने उन्हें ''सिम्बल आफ नॉलेज'' की पदवी से नवाजा है और खुले तौर से स्वीकार करता है कि आज तक उनके जैसा कोई दूसरा प्रतिभावान छात्र हमारे यूनिवर्सिटी में नहीं आया। लेकिन हमें बड़े दुःख के साथ यह कहना पड़ रहा है कि जिस व्यक्तित्व को पूरे विश्व से सम्मान मिला उसे अपने ही देश में पूरे जीवन भर अपमानित होकर जीना पड़ा और अपने और अपने लोगों के सम्मान और अधिकार के लिए मरते दम तक लड़ना पड़ा। जिस समय इस महान व्यक्तित्व का जन्म हुआ पूरे देश में जाति और वर्ण के नाम पर इंसानों से जानवरों जैसा ही नहीं बल्कि जानवरों से भी बदतर व्यवहार किया जाता था। समाज चार वर्णों (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र) में बँटा हुआ था। जिनमें शूद्रों की स्थिति सबसे निम्न थी। जिस तालाब में जानवर भी पानी पी सकते थे शूद्रों को उन तालाबों में भी पानी पीने का अधिकार नहीं था। यह स्थिति शूद्रों की ही नहीं थी बल्कि देश की आधी आबादी कही जाने वाली महिलाओं के साथ भी समाज के लोगों का व्यवहार अच्छा नहीं था उनको भी सिर्फ उपभोग की वस्तु और दासियों जैसा ही समझा जाता था और वैसा ही व्यवहार किया जाता था। उस समय की स्थिति को रामचरित मानस में तुलसीदास द्वारा लिये गये श्लोक द्वारा समझा जा सकता है। जिसमें उन्होंने लिखा है कि–

लोक वेद सब भांसिहि नीचा।
जासू छांह हुई लेइय रींचा।।
ढोल गंवार शूद्र पशु नारी।
सकल ताड़ना के अधिकारी।।
जे वर्षा धम तेली कुम्हारा।
श्वपच किरात कोल कलवारा।।[1]

इससे हम अनुमान लगा सकते हैं कि उस समय शूद्रों और नारियों की स्थिति कितनी विकट और भयानक रही होगी।

ऐसी सामाजिक व्यवस्था वाले समय में उस महापुरूष का जन्म शूद्र वर्ण के महार जाति में हुआ जो उस समय समाज की अत्यन्त निम्न जाति मानी जाती थी। महार जाति का होने के कारण उस महापुरूष को बाल्यावस्था में ही अनेकों बार अपमानित होना पड़ा यहाँ तक की उन्हें स्कूल में भी अन्य बच्चों के साथ शिक्षा प्रदान नहीं की जाती थी उन्हें निम्न जाति का होने के कारण कक्षा के बाहर ही बैठ कर शिक्षा लेनी पड़ती थी। उनके साथ उनके शिक्षकों का व्यवहार भी अच्छा नहीं रहता था वे भी उनको कई बार अपमानित करते थे। भला हो बड़ौदा के महाराजा साहूजी महाराज जी का जिन्होंने उस बालक की प्रतिभा को समझा और उन्हें अपने छात्रवृत्ति पर पढ़ने के लिए विदेश भेजा। जिसके परिणामस्वरूप अथक परिश्रम

और अपमान को सहते हुए भी वह महान व्यक्तित्व एक ऐसे प्रकाशपुंज के रूप में उभर कर दुनिया और भारतीय समाज के सामने आये जिसे देख दलितों और महिलाओं का शोषण करने वालों की आँखें चौधियाँ गई। जिनके द्वारा फैलाये गये ज्ञान के प्रकाश से आज तक भारत देश का संचालन हो रहा है। हम बात कर रहे भारतीय संविधान की जिसके द्वारा पूरे भारतीय समाज का संचालन हो रहा है और भारतीय संविधान निर्माता डॉ0 भीमराव अम्बेडकर की जिन्हें अगर आधुनिक भारत का निर्माता कहा जाय तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। उनके द्वारा बनाये गये संविधान से पूरे देश के सभी धर्मों और जाति के लोगों को समान अवसर और सम्मान से जीने का अधिकार मिल पाया है।

आधुनिक भारत के निर्माणकर्ता भारतीय संविधान निर्माता डा0 भीम राव अम्बेडकर का जन्म 14 अप्रैल सन् 1891 को मध्य प्रदेश के महु नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता जी का नाम रामजी मालोजी सकपाल और माता का नाम भीमाबाई था। वे अपने माता–पिता के चौदहवीं संतान थे। लेकिन सकपाल के तीन पुत्र बलराम, आनंदराव, भीमराव और दो पुत्रियां मंजुला और तुलसा ही जीवित रह सके बाबा साहब अम्बेडकर का विवाह 12 वर्ष की उम्र में रमाबाई के साथ हुआ था। जन्म के कुछ समय बाद उनके पिता जी महाराष्ट्र चले गये। महाराष्ट्र में महार जाति के लोगों को अछूत माना जाता था और उनके साथ समाज की बड़ी जातियाँ बड़ा घृणित व्यवहार करते थे। जिसके कारण उनको बचपन से अनेकों बार अपमान सहना पड़ा और इन्हीं अपमानों ने उनके भविष्य की रूपरेखा तैयार कर दी तथा उन्होंने अपना पूरा जीवन दबे कुचले लोगों के उत्थान के लिए समर्पित कर दिया। बाबा साहब बचपन से ही बहुत परिश्रमी, संयमी और जिम्मेदार थे। जब बाबा साहब हाई स्कूल की पढ़ाई कर रहे थे। तभी उनके पिता जो अंग्रेजों के यहाँ नौकरी करते थे सेवानिवृत्त हो गये जिसके कारण अनेकों समस्याएं होने लगी ऐसे समय में बाबा साहब खुले स्टेशन पर मजदूरी कर स्वयं का खर्च उठाते थे और घर का सहयोग करते थे। वर्ष 1907 में हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण किये। इसके पश्चात् उन्हें बड़ौदा के महाराजा ने छात्रवृत्ति प्रदान की जिसके सहारे उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त की और वर्ष 1912 में बी0ए0 उत्तीर्ण कर लिये। वर्ष 1913 में वे बड़ौदा के महाराजा की छात्रवृत्ति पर ही अमेरिका के कोलम्बिया विश्वविद्यालय में अध्ययन के लिए गये। वहाँ वर्ष 1915 में वे अर्थशास्त्र विषय में एम0ए0 की परीक्षा उत्तीर्ण किये। 1916 में उन्होंने विश्व की प्रसिद्ध शिक्षण संस्था में प्रवेश किया।

अगस्त 1917 में वे भारत लौट आये और बड़ौदा के महाराजा के यहाँ ''सैनिक सचिव'' के पद पर कार्य करना प्रारम्भ किये। लेकिन उच्च होने के बाद भी उनके साथ अन्य कर्मचारियों द्वारा यहाँ तक की चपरासी भी उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं रखता था क्योंकि वे अछूत थे। सन् 1920 में वे पुनः अध्ययन के लिए लंदन गये और 1924 में वे मास्टर ऑफ साइंस की उपाधि प्राप्त किये। बाबा साहब लन्दन विश्वविद्यालय से पी–एच0डी0 की उपाधि प्राप्त किये। इसी समय में वे बार एट लॉ की भी उपाधि प्राप्त किये।

वर्ष 1923 में बाबा साहब अम्बेडकर भारत लौट आये और बम्बई में वकालत का कार्य प्रारम्भ किये तथा उन्होंने ''बहिष्कृत भारत'' नामक मराठी पत्रिका का प्रकाशन प्रारम्भ किया।

सन् 1927 में उन्हें बम्बई विधान परिषद् का सदस्य मनोनीत किया गया। उसके बाद प्रथम गोलमेज सम्मेलन 12 नवम्बर 1931, द्वितीय गोलमेज सम्मेलन 7 सितम्बर 1931 और तृतीय गोलमेज सम्मेलन 17 नवम्बर 1932 में शामिल हुए और वे उन्होंने सम्मेलनों में दलित समाज की स्थिति का वास्तविक चित्रण प्रस्तुत किया। जिसके कारण उन्हें महात्मा गांधी के टकराव का सामना भी करना पड़ा। दलितों के अछूतो द्वारा कार्यक्रम के अन्तर्गत उन्होंने ''बहिष्कृत हितकारिणी सभा'' की स्थापना की और अगस्त 1936 में

'इण्डिपेन्टेण्ट लेबर पार्टी' की भी स्थापना किये उन्होंने दलितों के अधिकारों की रक्षा के लिए ''दलित पैंथर'' नामक संस्था की भी स्थापना की तथा महार आंदोलन, काला राम मंदिर आंदोलन का संचालन भी किये।

अगस्त 1942 में उन्हें गवर्नर जनरल परिषद् का सदस्य मनोनीत किया गया। सन् 1947 में उन्हें संविधान निर्माण सभा के प्रारूप समिति का अध्यक्ष पद दिया गया और 1949 में भारत के पहले विधि मंत्री बने। परन्तु हिन्दू कोड बिल को पास न किये जाने के कारण उन्होंने 1951 में मंत्री पद से त्याग–पत्र दे दिया। सन् 1948 में उनका दूसरा विवाह पहली पत्नी के स्वर्गवास हो जाने के बाद सविता अम्बेडकर के साथ हुआ। सन् 1955 में उन्होंने 'भारतीय बुद्ध महासभा' की स्थाना की और 14 अक्टूबर 1956 में उन्होंने अपने समर्थकों के साथ 'बौद्ध धर्म' स्वीकार कर लिये तथा 6 दिसम्बर 1956 को उनका निधन हो गया। जिस दिन को आज उनके समर्थक ''बाबा साहब अम्बेडकर का परिनिर्वाण दिवस'' के रूप में मनाते है। वे अपने जीवन में गौतम बुद्ध, संत कबीर और महात्मा ज्योतिबा फूले से काफी प्रभावित थे। आज वे हमारे बीच में नहीं है। लेकिन उनके किये कार्य और संविधान निर्माण हमारे देश और समाज के लिए मार्गदर्शक का कार्य रहे है।

डा0 भीम राव अम्बेडकर को जहाँ लोग सिर्फ दलितों के लिए कार्य करने वाले समझते है लेकिन ऐसा नहीं है। सिर्फ दलितों के लिए ही नहीं बल्कि वे सम्पूर्ण समाज के उद्धार के लिए कार्य किये जिनमें से उनके द्वारा श्रमिकों के लिए किये गये कार्य सराहनीय है।

बहुत कम लोग जानते होंगे कि भारत में रोज 12 घंटे से आठ घण्टे काम करने की योजना लागू कराने में बाबा साहब अम्बेडकर की बड़ी अहम् भूमिका थी। उन्होंने 27 नवम्बर 1942 को नई दिल्ली में भारतीय श्रम सम्मेलन के 7वें सत्र में इस योजना को लागू करने का प्रस्ताव रखा। इस सम्मेलन में शामिल केन्द्र और प्रांतीय सरकारों के प्रतिनिधि, नियोक्ता और श्रमिक संगठनों ने सर्वसम्मति से सप्ताह में 48 घण्टे के सिद्धान्त का समर्थन किया था। आजादी के बाद कारखाना अधिनियम 1948 लागू होने के बाद रोज काम करने के आठ घण्टे निर्धारित किये गये। इस अधिनियम के तहत आठ घण्टे से ज्यादा काम करने पर अतिरिक्त मजदूरी देने का प्रावधान भी शामिल था। साथ ही कर्मचारी को सप्ताह में एक दिन का अवकाश देने का प्रावधान भी था। 1987 में इस अधिनियम में संशोधन भी किया गया।[2]

उन्होंने श्रमिकों के हितों को महत्वपूर्ण समझा और उन्हें मिल के शोषण से बचाने का प्रयास किया उन्होंने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए श्रमिकों का एक स्वतंत्र दल भी बनाया और जब उन्होंने संविधान सभा में प्रारूप समिति के अध्यक्ष पद को ग्रहण किये तब उन्होंने संविधान में श्रमिकों के भविष्य को ध्यान में रखते हुए संविधान के भाग तीन मौलिक अधिकारों के अनुच्छेद 19(1), 23, 24 का निर्माण किये जिससे श्रमिकों के अधिकारों की रक्षा हो सके।

अनुच्छेद 19(1) (छ) के अधीन भारत के प्रत्येक नागरिक को कोई वृत्ति उपजीविका, व्यापार या कारोबार करने का अधिकार है। अनुच्छेद 23, 24 का उद्देश्य है कि मानव के अवैध व्यापार, बेगार और बलात श्रम, कारखानों आदि में बच्चों के नियोजन आदि के द्वारा शोषण के विरूद्ध संरक्षण प्रदान किये जाए। मानवों यानी स्त्रियों–बच्चों आदि का अवैध व्यापार, बलात् श्रम आदि मानव की उस गरिमा के प्रतिकूल है जो कि उद्देशिका में प्रतिष्ठापित मूल संवैधानिक मूल्य है। पुरानी जमींदारी प्रथा में, असामियों को कभी–कभी अपने जमींदारों की मुफ्त सेवा करने के लिए विवश किया जाता था। इसे बेगार कहा जाता था। न्यायालयों ने निर्णय दिया है कि भले ही कुछ मेहनताना क्यों न अदा किया जाए, वह श्रम बलात् श्रम है (पीपल्स यूनियन बनाम भारत संघ, ए आई आर 1982 एस सी 1473)।[3]

इसके पीछे समूचा उद्देश्य यह है कि राज्य या किसी अन्य व्यक्ति को, उसकी इच्छा के विरूद्ध कार्य करने के लिए विवश करने या किसी तरह से मानव देह का दुरूपयोग करने की इजाजत नहीं होना चाहिए।''

बाबा साहब अम्बेडकर के उपरोक्त कार्यों से स्पष्ट होता है कि वे श्रमिकों के लिए समर्पित सामाजिक और राजनीतिक विचारक थे।

बाबा साहब डा0 भीम राव अम्बेडकर का पूरा जीवन सामाजिक सुधारों के लिए समर्पित रहा। जिसके लिए उन्हें अपने कई सन्तानों को भी खोना पड़ा फिर भी उन्होंने कभी हिम्मत नहीं हारी और ना ही अपने मार्ग से विचलित हुए। वे दलितों और शोषितों के उद्धार के लिए जीवन भर संघर्ष करते रहे। बाबा साहब पर ये भी आरोप कुछ लोग लगाते थे कि वे राष्ट्रवादी नहीं है पर ऐसा नहीं था वे भारतीय स्वाधीनता के प्रबल समर्थक थे और स्वाधीनता के राजनीतिक पक्ष को भी सुदृढ़ करने पर बल देते थे पर उनके अनुसार राजनीतिक स्वाधीनता से पूर्व सामाजिक परिवर्तन आवश्यक था। वे सामाजिक व्यवस्था में पूर्ण सुधार चाहते थे। वे जानते थे कि सामाजिक व्यवस्था में पूर्ण सुधार हुए बिना राजनीतिक स्वाधीनता का लाभ समाज के मुठ्ठी भर लोगों को ही प्राप्त होगा। वे भी ऐसे लोगों को जो खुद अपने देश के लोगों के साथ जानवरों से भी बदतर व्यवहार करते थे क्योंकि उन्हें खुद अपने जीवन में अनेकों बार अपमान सहना पड़ा था। वस्तुतः जीवन के प्रारम्भ में उन्हें घोर अपमान और अमानवीय व्यवहार सहना पड़ा था। इससे उनके मन में सवर्णों के प्रति कटुता उत्पन्न हो गई थी।

उन्हें हिन्दूओं के व्यवहार और नीति से यह पूर्ण ज्ञान हो गया था कि जब तक हिन्दू धर्म में व्याप्त वर्ण व्यवस्था और जाति व्यवस्था समाज में बनी रहेगी दलितों और शोषितों का कभी उद्धार नहीं हो सकता है। इसलिए बाबा साहब दलितों और शोषितों के लिए अपना जीवन समर्पित कर दिये। इसलिए उन्हें **''दलितों का मसीहा''** भी कहा जाता है।

डा0 भीम राव अम्बेडकर हिन्दू धर्म की वर्ण व्यवस्था के प्रबल आलोचक थे। उस समय हिन्दू समाज व्यवस्था चार वर्णों पर आधारित थी। ये चार वर्ण–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र थे। इस हिन्दू व्यवस्था में शूद्रों के हितों की रक्षा की कोई व्यवस्था नहीं थी। हिन्दूओं की सामाजिक व्यवस्था मनुस्मृति के आधार पर चलती थी।

मनुस्मृति में लिखा है कि–

उच्छिष्टमन्नंदातव्यं जीर्वानि वासनानि च।
पुल्काश्चैव धन्यानां जीर्णानि वासनानि परिच्छदा।।[4]

अर्थात् शूद्र को जूठन खाने के लिए दिये जाय। पुराने वस्त्र पहनने के लिए दिये जाये। निस्सार धान दिये जाए और फटे–पुराने चिथड़े ओढ़ने बिछाने के लिए दिये जाए।

इसी प्रकार शूद्रों को शिक्षा से वंचित रखने के लिए हिन्दू ग्रन्थ रामचरितमानस के पेज 992 दोहा 153(3) उत्तरकाण्ड में लिखा है कि–

''अधम जाति में विधाय पाये, भयहु यथा अहि दूध पिलाये''[5]

अर्थात् जिस प्रकार से साँप को दूध पिलाने से वह और विषैला होता है वैसे ही शूद्र (नीच जाति वाले) को शिक्षा देने से वो और खतरनाक हो जाते है। डा0 भीमराव अम्बेडकर मनुस्मृति को अन्याय, शोषण और असमानता का प्रतीक मानते थे। उनके अन्दर हिन्दूओं की परम्परागत सामाजिक व्यवस्था के विरूद्ध गहरा आक्रोश था वे इस व्यवस्था को पूर्ण रूप से बदलना चाहते थे। वे इस बात को भली–भांति जानते थे कि जब तक समाज का संचालन मनुस्मृति से होता रहेगा तब तक शूद्रों को भला कभी नहीं हो सकता है और उनकी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति में सुधार नहीं हो सकता।

उनका मानना था कि जिन ग्रन्थों में मानव विरोधी उपदेश लिखे हो वे ग्रन्थ पवित्र कभी नहीं हो सकते। ऐसे ग्रन्थों को समाज के बीच से हटा दिये जाने चाहिए।

जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने 25 दिसम्बर सन् 1924 को मनुस्मृति को जलाने का कार्य किये और समाज को यह संदेश देने का प्रयास किये कि मनुस्मृति आधारित सामाजिक व्यवस्था को बदलने का समय आ चुका है और अब इस व्यवस्था को शूद्र समाज स्वीकार नहीं करेगा।

डा0 भीम राव अम्बेडकर जाति व्यवस्था के भी सख्त विरोधी थे। उनका मत था कि चार वर्णों पर आधारित हिन्दू व्यवस्था ने जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता को पैदा किया है। इस जाति व्यवस्था के कारण आज समाज में शोषण और असमानता व्याप्त है। उनका मानना था कि अस्पृश्यों की समस्याओं का समाधान छोटे–छोटे सुधार से नहीं हो सकता है। उसके समाज में व्यापक परिवर्तन की आवश्यकता है। कालान्तर में समाज के कुछ स्वार्थी लोगों ने धर्म की आड़ लेकर इस प्रथा को जन्म दिये और उन्होंने समाज के कमजोर और गरीब लोगों को अपनी इस प्रथा का शिकार बनाये और उन्हें शिक्षा, व्यापार, सामाजिक सम्मान से वंचित कर दिये।

प्रो0 वाडिया जाति प्रथा के बारे में लिखते है कि–

उपनिषदों का उच्च कोटि का तत्व दर्शन और गीता का कर्म–ज्ञान इस व्यवस्था में अत्याचारों के कारण केवल वाग्जाल बन गया। एक तरफ तो भारत सम्पूर्ण विश्व को एकता का उपदेश देता है और दूसरी ओर उसने एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था को अपनी छाती से चिपटा रखा है जिसने उसकी सन्तानों का निर्ममतापूर्वक अलग–अलग गुटों में विभाजन कर रखा है, उनको अनन्त शताब्दियों के लिए एक–दूसरे से पृथक कर दिया।[6]

यह विचार किया जाय कि यदि पहले हिन्दू व्यवस्था तो वर्ण आधारित थी तो जातियों का जन्म किस प्रकार हुआ और उनमें नीच और ऊँच का भेद–भाव किस प्रकार आया तो माना जाता है कि अंग्रेजी शब्द कास्टा (Casta) की उत्पत्ति पुर्तगाली मूल के शब्द कास्टा (Casta) से हुई। जिसका अर्थ है विशुद्ध नस्ल।

वर्ण जिसका शाब्दिक तात्पर्य है 'रंग' समाज के ब्राह्मण, क्षत्रीय, वैश्य और शूद्र इन चार श्रेणियों के विभाजन को वर्ण कहा जाता है। हालांकि इस विभाजन में जनसंख्या का एक महत्वपूर्ण भाग शामिल नहीं रहा है जो कि ''जाति बहिष्कृत'' विदेशियों, दासों, युद्धों में पराजित लोगों एवं अन्य लोगों से मिलकर बना है। इन्हें कभी–कभी पंचम या पाँचवी श्रेणी भी कहा जाता है।[7]

जाति की उत्पत्ति का अनुमान पंडित जवाहर लाल नेहरू द्वारा लिखित पुस्तक ''भारत की खोज'' से मिलता है, जिसमें उन्होंने लिखा है कि– ''हिन्दुस्तान की और उसके साथ ही भारत की जाति के संस्थापक भरत'' के नाम पर आधारित इसका प्राचीन संस्कृत नाम है।'' इससे यह अनुमान लगता है कि जाति की उत्पत्ति राजा भरत द्वारा की गयी थी। ''हरबर्ट रिजले अपने प्रजातीय सिद्धांत में लिखे है कि आर्यों ने भारत में द्रविड़ों पर विजय प्राप्त करके उनसे दासों की तरह व्यवहार करना आरम्भ कर दिया। इन्हीं को कुछ समय बाद शूद्र वर्ण के रूप में देखा जाने लगा। धीरे–धीरे रक्त की विशुद्धता के आधार पर आर्य लोग स्वयं भी ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्य जैसे वर्णों में विभाजित हो गये इसके बाद विभिन्न वर्णों के बीच प्रजातीय मिश्रण होने से नये समूहों का निर्माण हुआ।[8]

नेसफिल्ड ने अपने व्यावसायिक सिद्धांत में बताया कि विभिन्न पेशों अथवा व्यवसायों का महत्व और पवित्रता एक दूसरे से अधिक और कम के कारण ही इनसे सम्बन्धित जातियों की प्रस्थिति भी एक दूसरे से उच्च और निम्न हो गयी।[9]

जाति व्यवस्था में निम्न प्रस्थिति में रहने वाली अस्पृश्य या अछूत जातियों के साथ समाज के अन्य जातियों द्वारा पशुवत व्यवहार किया जाता रहा है। जिन्हें समय–समय पर कई नाम दिये गये।

'साइमन कमीशन' ने इन्हें अनुसूचित जाति नाम दिया लेकिन ज्योतिबा फूले जैसे महान समाज सुधारक ने इन्हें सबसे पहले दलित जाति के नाम से सम्बोधित करने पर जोर दिया। महात्मा गांधी ने इन्हें हरिजन नाम दिये।[10]

26 जनवरी 1950 से नया संविधान लागू होने के पहले ही अनुसूची तैयार कर ली गई। इस अनुसूची में शामिल जातियों को ''अनुसूचित जातियाँ'' कहा गया।

डा0 भीम राव अम्बेडकर जी बचपन से ही हिन्दू धर्म की इस व्यवस्था से आहत थे। उस समय अस्पृश्य जातियों को अनेकों अपमानजनक व्यवहारों को सहना पड़ता था। अस्पृश्यों को सार्वजनिक कुँओं, तालाबों का उपयोग करने, मंदिर में पूजा करना, सम्पत्ति रखने पर प्रतिबन्ध था। अस्पृश्यों को मैला उठाने और मरे पशुओं को उठाने का कार्य दिया गया था, उच्च जातियों के जूठन और पुराने कपड़ों से गुजारा करना पड़ता था, उनका निवास सार्वजनिक बस्तियो से बाहर होता था।

डा0 भीम राव अम्बेडकर जी समाज की इस दशा को बदलना चाहते थे। अतः उन्होंने इस बात पर बल दिया कि अछूतों को अपनी बुरी आदतों को छोड़ देना चाहिए और हीनता की भावना त्याग करके आत्मविश्वास की भावना उत्पन्न करना चाहिए तथा आत्मसम्मान का जीवन व्यतीत करना चाहिए।

वस्तुतः उन्होंने अछूतों और दलितों के लिए महद की सभा में स्त्रियों को सम्बोधित करते हुए कहा कि ''कभी मत सोचो कि तुम अछूत हो। साफ सुथरे रहो और जिस तरह के कपड़े सवर्ण स्त्रियाँ पहनती है तुम भी पहनों। यह देखो कि वे साफ हैं। यदि तुम्हारे पति और लड़के शराब पीते हैं, तो खाना मत दो तथा अपने बच्चों को स्कूल भेजो।[11]

बाबा साहब अम्बेडकर ने दलितों को न्याय दिलाने और जातिवाद मिटाने के लिए मूक पत्रिका बहिष्कृत भारत, बहिष्कृत हितकारिणी सभा जैसी संस्थाओं का गठन किये और स्वयं नासिक धर्म सत्याग्रह, काला राम मंदिर प्रवेश अभियान, चेवला कान्फ्रेंस जैसे आन्दोलनों का नेतृत्व किये। वे दलितों को एकजुट करने के लिए ''दलित पैंथर' नामक युवाओं की संस्था का भी गठन किये। वे प्रथम और द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में दलितों के लिए पृथक प्रतिनिधित्व पर भी बल दिये। जिसका परिणाम रहा कि दलितों और पिछड़ों को नौकरियों और चुनावों में आरक्षण की व्यवस्था मिल सकी और समाज में समानता का मार्ग प्रशस्त हो पाया। बाबा साहब ने ''महार वतन'' कानून का भी विरोध किया जिससे महारों को बंधुआ मजदूरी और दासता के जीवन से मुक्ति मिल सकी।

डा0 भीम राव अम्बेडकर महिलाओं की भी सामाजिक स्थिति से काफी व्यथित थे और उनमें सुधार को आवश्यक मानते थे। जहाँ भारतीय समाज में महिलाओं को ज्ञान की देवी, धन की देवी अन्य नामों से तथा घर की लक्ष्मी जैसे शब्दों द्वारा संबोधित किया जाता था लेकिन वास्तविक स्थिति अलग ही थी क्योंकि हिन्दू ग्रन्थ ही महिलाओं के सम्मान और स्वाभिमान के खिलाफ में लिखे गये प्रतीत होते है।

हिन्दू समाज व्यवस्था और ग्रन्थों के शब्दों और कार्यों से स्पष्ट होता है कि हिन्दू समाज नारियों को सम्मानजनक जीवन प्रदान करना ही नहीं चाहता था। जहाँ देवदासी, बालविवाह, नैतिक प्रथाएं, धर्म के नाम पर पोषित हो रही हो उस समाज में महिलाओं का भला कैसे हो सकता है। हिन्दू सामाजिक व्यवस्था में धर्म और नैतिकताओं के नाम पर सदियों से महिलाओं के साथ होने वाली असमानता और शोषण को देखा जा सकता है। जहाँ रामायण में सिर्फ सीता द्वारा अग्नि परीक्षा देना या भरी सभा में अपनों के बीच में ही द्रौपदी चीर हरण होना इस बात का उदाहरण रहा है कि महिलाओं की स्थिति हिन्दू व्यवस्था में सदियों से अच्छी नहीं रही है।

बाबा साहब भीम राव अम्बेडकर इस असमानता और शोषण की व्यवस्था में परिवर्तन चाहते थे। उनका कहना था कि – ''मैं किसी समुदाय की प्रगति महिलाओं ने जो प्रगति हासिल की है उससे मापता हूँ।'' डा0 भीम राव अम्बेडकर साहब का मानना था कि जिस समाज की आधी आबादी अशिक्षित, अपमानित, और शोषित होगी वह समाज कभी आगे नहीं बढ़ सकता है, इसलिए महिलाओं को समान अवसर और सम्मान मिलना चाहिए।

डा0 भीम राव अम्बेडकर के प्रयास के द्वारा ही महिलाओं को सम्पत्ति में हिस्सेदारी, भरण–पोषण, तलाक और घरेलू हिंसा से मुक्ति का मार्ग मिल सका।

जब वे संविधान सभा के अध्यक्ष बने तो उन्होंने संविधान में अनेकों संवैधानिक प्रावधानों को शामिल किये। डा0 भीमराव अम्बेडकर के अथक प्रयासों के फलस्वरूप सन् 1951 में उन्होंने हिन्दू कोड बिल संसद में पेश किया। डा0 अम्बेडकर का कहना था कि सही मायने में प्रजातंत्र तब आयेगा जब महिलाओं को पैतृक सम्पत्ति में बराबरी का हिस्सा मिलेगा और उन्हें पुरूषों के समान अधिकार दिये जायेंगे।[12] आज संविधान के द्वारा ''हिन्दू विवाह अधिनियम 1955, देहज निरोधक अधिनियम 1961, हिन्दू नाबालिग तथा संरक्षकता अधिनियम 1956, समान वेतन अधिनियम 1976, हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम 1956 या केन्द्रीय पंचायत राज अधिनियम'' के द्वारा महिलाओं को समाज में सम्मान, समानता और अधिकार मिल रहे है। आज अगर महिलाएं उन्नति के मार्ग पर आगे बढ़ रही है तो उसमें डा0 भीम राव अम्बेडकर जी के अथक परिश्रम और त्याग का परिणाम है क्योंकि बाबा साहब अम्बेडकर महिलाओं के लिए तैयार ''हिन्दू कोड बिल'' संसद में पास न होने के कारण विरोध में अपने 'कानून मंत्री' के पद को त्याग भी दिया था।

अर्थशास्त्र के क्षेत्र में उनकी विद्वता का अनुमान लगाने के लिए अमर्त्य सेन की टिप्पणी ममदगार हो सकती है। 2007 में उन्होंने अपने व्याख्यान में कहा था कि ''अम्बेडकर अर्थशास्त्र के क्षेत्र में मेरे जनक है।''

अगस्त 1925 में ब्रिटिश सरकार ने मुद्रा की प्रणाली का अध्ययन करने के लिए रॉयल कमीशन आन इण्डियन करेन्सी एवं फाइनेन्स का गठन किया। इस बैठक में हिस्सा लेने के लिए 40 विद्वानों को आमंत्रित किया गया। उनमें एक अम्बेडकर भी थे। वे जब आयोग के सामने उपस्थित हुए तो उनके हाथों में ''इवैलुएशन ऑफ पब्लिक फाइनेन्स इन ब्रिटिश इण्डिया'' की प्रतियां थी। उस आयोग ने अपनी रिपोर्ट 1926 में प्रकाशित की और उसी रिपोर्ट के आधार पर कुछ वर्षों बाद भारतीय रिजर्व बैंक की स्थापना हुई। इस बैंक की अभिकल्पना/नियमानुदेश कार्य शैली, और रूप रेखा, अम्बेडकर की शोध पुस्तक 'प्राब्लम आफ रूपया' पर आधारित है।

1893 तक भारत में केवल चाँदी के सिक्कों का प्रयोग किया जाता था तथा स्वर्ण मुद्रों का मूल्य 15 चाँदी के सिक्कों के बराबर था जब मुद्रा अवमूल्यन होने से महंगाई में वृद्धि हुई थी। तब अम्बेडकर ने कहा था कि मुद्रा का वास्तविक मूल्य उसके बाद में मिलने वाली वस्तुओं से तय होना चाहिए। न कि बेस कीमती धातुओं से। सोना बेस किमती हो सकता है। पर वह भूखे का पेट नहीं भर सकता न ही उससे नंगे का तन ढका जा सकता है। इसलिए मुद्रा का भरोसेमन्द होने के साथ–साथ विनय प्रणाली में स्वामित्व भी जरूरी है और रजत मुद्रा के उतार चढ़ाव को देखते हुए स्वर्ण मुद्रा को अपनाने का सुझाव दिया। उन्हीं के आधार पर आगे चलकर भारतीय रिवर्ज बैंक की मूल भूत सैद्धान्तिक का विकास हुआ।

अम्बेडकर जी को मशीनों और स्पर्द्धात्मकता से को कोई शिकायत न थी। लेकिन वे चाहते थे कि सभी प्रमुख और आधारभूत उद्योग सरकार के अधीन हो। 1946 में अखिल भारतीय स्तर पर भूमि सुधार की आवश्यकता पर बल देते हुए कहा कि– भूमि वितरण में असमानता के कारण प्रेम शक्ति का दुरूपयोग होता है। आवश्यकता से कई गुना भूमि के मालिक जमींदार श्रम शक्ति का उपयोग इसलिए नहीं करते क्योंकि उन्हें जरूरत से कई गुना श्रमशक्ति बेगार में उपलब्ध हो जाती है वही बहुत सारे लोगों के पास छोटे खेत

होने से अच्छी खेती नहीं हो पाती। जिससे जमीन की बरबादी होती है। वही दूसरी ओर बेगार में मजदूरी से श्रम का अवमूल्यन होता है। वे बैंकों का राष्ट्रीयकरण चाहते थे और कृषि योग्य भूमि का सरकार द्वारा अधिग्रहण कर उसे उचित आकार के फार्मों में विभाजित कर समुचित अनुपात में समाज के सभी सदस्यों के बीच समवितरण चाहते थे जिससे समाज में आर्थिक समानता की स्थापना हो सके।

डा0 भीम राव अम्बेडकर को जहाँ अधिकतर लोग एक समाजशास्त्री या राजनीति के ज्ञाता के रूप में नहीं जानते है और उन्हें सिर्फ ''दलितों के मसीहा'', उनके लिए संघर्ष करने वाले या भारतीय संविधान निर्माता के रूप में पहचानते हैं यहाँ तक कि दलित लेखक और कार्यकर्ता भी उनकी पहचान को सिर्फ समाजसेवक या अच्छे राजनीतिज्ञ में प्रचारित कर पाये है। लेकिन बहुत कम लोगों को ये मालूम होगा कि डा0 भीम राव अम्बेडकर एक अच्छे समाजशास्त्री; राजनीतिज्ञ होने के साथ उच्च स्तर के अर्थशास्त्री थे। उनके द्वारा किये गये कार्य क्षेत्र और उनके दिये गये विचार अर्थशास्त्र के क्षेत्र में आज भी उतने ही प्रासंगिक है जितने की कल थे।

डा0 भीमराव अम्बेडकर जी के सामाजिक और आथ्रिक विचार देश और सर्वसमाज के लिए जितने मार्गदर्शन किये, उसी प्रकार उनके धार्मिक विचार भी सर्वसमाज के लिए सर्वजन हिताय, सर्वजन सुखाय के सिद्धान्त पर आधारित थे। उनके धार्मिक विचार स्वर्ग–नर्क, पवित्र–अपवित्र, शुद्ध–अशुद्ध अवतारवाद या आत्मा–परमात्मावाद पर आधारित नहीं थे। जिसके कारण कट्टर धार्मिक और रूढ़ीवादी लोग उनको नास्तिक या हिन्दू धर्म विरोधी मानते थे। ऐसा भी नहीं था कि बाबा साहब अम्बेडकर धर्म या उसकी उपयोगिता को नकारते थे बल्कि वे धर्म को समाज के लिए आवश्यक मानते थे। उनके धार्मिक विचार रूढ़ीवादी या कट्टरवादी न होकर मानवतावादी था।

बाबा साहब अम्बेडकर ने धर्म के बारे में अपने विचार रखते हुए कहा कि– ''मैं ऐसे धर्म को मानता हूँ जो स्वतंत्रता, समानता और भाईचारा सिखाता है।

बाबा साहब अम्बेडकर जी का मानना था कि धर्म का निर्माण समाज करता है, धर्म ने समाज का निर्माण नहीं किया। इस धर्म के नियम और कार्य प्रणालियाँ सर्व समाज के समता और समानता पर आधारित होना चाहिए अगर जो धर्म समाज को ऊँच–नीच, शुद्ध–अशुद्ध के रूप में बांटता हो, वह धर्म नहीं हो सकता, बल्कि वह शोषण करने वाले के शोषण का हथियार और ऐसा धर्म शोषितों के लिए अभिशाप होता है।

यही कारण रहा जो उनको हिन्दू धर्म में पैदा होने के बाद भी उन्होंने हिन्दू धर्म का समर्थन नहीं किया क्योंकि उन्होंने देखा कि हिन्दू धर्म ऊँच–नीच, छुआ–छूत के भेदभाव से भरा पड़ा है। जिसमें कुछ लोगों को पैदा होने के साथ ही ईश्वर का स्वरूप मान लिया जाता है, वही समाज के कुछ लोगों के साथ धर्म के नाम पर जानवरों जैसा व्यवहार किया जाता है, यही कारण रहा जो उनको हिन्दू धर्म से दूर ले गया।

उन्होंने हिन्दू धर्म को छोड़कर अन्य धर्मों मुस्लिम, ईसाई, बौद्ध धर्म का अध्ययन किया। परन्तु अन्य धर्मों में भी पायी जाने वाली धार्मिक कट्टरता और अवतारवाद के विचारधारा से सहमत नहीं थे। क्योंकि उनका मानना था कि धार्मिक कट्टरता शोषण का जरिया होता है, जो समाज में समानता नहीं लाने देता है।

बाबा साहब अम्बेडकर मुस्लिमों में पायी जाने वाली पर्दा प्रथा से सहमत नहीं थे, जिसके बारे में उन्होंने अपनी किताब ''पाकिस्तान अथवा भारत का विभाजन'' के पृष्ठ 230 पर लिखा है– मुस्लिम महिलाओं से बुर्के में सामने आने कि उम्मीद की जाती है, उनका बाहर के कमरों, बरामदों और बगीचों में प्रवेश न

पाये इसलिए उनका निवास मकान के पिछले भाग में होता है, सभी महिलाएँ वृद्ध हो या जवान उन्हें घर के अन्दर ही रहना पड़ता है। मुस्लिम महिलाएँ इबादत के लिए मस्जिद में भी नहीं जा सकती है।''[13]

पर्दा प्रथा के कारण मुस्लिम महिलाएँ अच्छी शिक्षा और नौकरी भी प्राप्त नहीं कर पाती है और यही कारण है कि मुस्लिम महिलाएँ आज भी अन्य जाति और धर्म की महिलाओं से पिछड़ रही है। मुस्लिम महिलाएँ आज भी बाहर जाते वक्त अपने आप को बुर्के में ढक कर जाती है। जिनकी वजह से उनमें एक प्रकार की दासता और हीनता की मनोवृत्ति बन जाती है। मुश्किलों में ऐसी प्रथाएँ आज भी इसलिए व्याप्त है क्योंकि ये धार्मिक प्रथा के रूप में मान्य है।

डा0 भीमराव अम्बेडकर को एक बार ईसाई सभा को सम्बोधित करने के लिए आग्रह किया गया। डा0 भीमराव अम्बेडकर ने शोलापुर में 1 जनवरी 1938 को ओजस्वी भाषण देते हुए, ईसाई धर्म के बारे में अपने विचार रखे और कहा कि– धर्म के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर उन्हें केवल दो व्यक्तित्व प्रभावित कर सके वे थे ''बुद्ध और ईसा मसीह''। जब उनसे ईसाई धर्म के बारे में पूछा गया तो उन्होंने कहा की इसाई धर्म स्वीकार करने से दलित और पिछड़े छात्र अपनी छात्रवृत्ति खो देंगे जिससे उनकी शिक्षा और आर्थिक विकास रूक जायेगा।

बाबा साहब अम्बेडकर का मानना था कि किसी समाज का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक वह शैक्षिक और आर्थिक रूप से मजबूत न हो जाए। इसलिए किसी समाज के आगे बढ़ने के लिए आर्थिक विकास, धार्मिकता से कहीं ज्यादा महत्वपूर्ण है। बाबा साहब अम्बेडकर ऐसा धर्म चाहते थे जो लोगों को इस सम्बन्ध में निर्देशित करें कि उन्हें एक दूसरे के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए। साथ ही जो समानता, भातृत्व और स्वतंत्रता के दृष्टिकोण से दूसरों तथा भगवान के प्रति व्यक्ति के कर्तव्यों का निर्धारण करें।

इस प्रकार बाबा साहब अम्बेडकर सभी धर्मों का अध्ययन करने के बाद पाये कि बौद्ध धर्म सभी धर्मों में सबसे अधिक मानवतावादी है, जो लोगों को अंधविश्वास और पाखण्ड से दूर रख समानतावादी, मानवतावादी और सत्य ज्ञान पर आधारित दृष्टिकोण प्रदान करता है। जिसके कारण बाबा साहब ने महाराष्ट्र की उपराजधानी नागपुर में 14 अक्टूबर 1956 को अपने 500000 अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म की दीक्षा ली।

बाबा साहब अम्बेडकर के धार्मिक विचार सभी धर्मों के लोगों के लिए आज भी उतने ही प्रासंगिक है जितने पहले थे, क्योंकि आज भी देश भर में दलितों, पिछड़ों और महिलाओं को उनके अधिकारी से वंचित किया जा रहा है, और उनका शोषण किया जा रहा है। जिसका उदाहरण दलितों का मंदिरों में प्रवेश पर रोक, हिन्दू धर्म ग्रन्थों का हवाला देकर छुआ–छूत करना या महिलाओं का सबरीमाला मंदिर में प्रवेश पर रोक लगाना धार्मिक शोषण का बड़ा उदाहरण है।

आज देश में धर्म के नाम पर दंगा होना या लोगों को धर्म के नाम पर बाँट कर राजनीति करना धार्मिक असमानता का बड़ा उदाहरण है। जिसका परिणाम पूरा देश भुगत रहा है। अगर आज हमें देश को एकता के सूत्र में बाँधना है और देश में अमन शान्ति बनाए रखना है तो बाबा साहब के मानवतावादी धार्मिक विचारों को समझने और उनको ग्रहण करने की आवश्यकता है।

डा0 भीमराव अम्बेडकर एक सच्चे देश भक्त और समाज सुधारक थे। वे देश की स्वतंत्रता से लेकर समाज के सभी वर्गों (दलित, महिला, अस्पृश्य) की भी स्वतंत्रता चाहते थे। उनका मानना था कि देश की स्वतंत्रता आवश्यक है लेकिन उससे ज्यादा अपने ही लोगों द्वारा शोषित दलितों, अस्पृश्यों, महिलाओं की स्थिति में सुधार होना अति आवश्यक है क्योंकि राष्ट्र तभी विकास कर सकता है जब उसके नागरिकों के अधिकार सुरक्षित रहते है।

डॉ0 भीम राव अम्बेडकर दलितों, अस्पृश्यों और महिलाओं से यह अपील करते थे कि आप सभी लोगों को आपके अधिकार तब नहीं मिलेंगे जब तक आप उसके बारे में जानेंगे नहीं क्योंकि–

''जो समाज अपना इतिहास नहीं जानता वह समाज कभी इतिहास नहीं बना सकता'' इसलिए आपको अपने बारे में जानने के लिए शिक्षित होना होगा क्योंकि

''शिक्षा शेरनी के दूध के समान है,
जो जितना जियेगा उतना दहाड़ेगा।''

वे दलितों और महिलाओं के समाज की स्थिति से काफी चिंतित रहते थे क्योंकि उनको शिक्षा सम्पत्ति जैसे सारे अधिकारों से वंचित रखा गया था। वे लोगों को अच्छे कपड़ों को पहनने, घृणित पेशों को छोड़ने की भी अपील करते थे और जब वे संविधान सभा के अध्यक्ष बने तो संविधान में इन सभी वर्गों के अधिकारों की रक्षा के लिए कानून लिखे, जिसके द्वारा आज भी उनकी रक्षा हो रही है।

वर्तमान भारतीय समाज में अगर डा0 भीम राव अम्बेडकर जी के कार्यों की उपयोगिता देखी जाए तो उनके विचार आज भी उतने ही प्रासंगिक है। सारे कानूनी प्रावधानों के बावजूद आज भी दलितों और महिलाओं से भेद–भाव किया जाता है और उनकी आर्थिक स्थिति सवर्ण जातियों से निम्न है। आज भी उनके साथ छुआछूत का व्यवहार किया जाता है, धर्म के नाम पर महिलाओं के साथ असमान व्यवहार आज भी जारी है। जिसके उदाहरण के रूप में ''सबरीमाला मंदिर'' में महिलाओं का प्रवेश न दिया जाना है।

डा0 भीमराव अम्बेडकर समाजशास्त्री, राजनीतिज्ञ के साथ–साथ अच्छे अर्थशास्त्री भी थे वे जानते थे कि जब जो समाज आर्थिक रूप से मजबूत नहीं होगा उसको कभी भी सम्मान और अधिकार नहीं मिल सकता है इसलिए वे कहते थे कि– ''इतिहास बताता है कि जहाँ नैतिकता और अर्थशास्त्र के बीच संघर्ष होता है वहाँ जीत हमेशा अर्थशास्त्र की होती है, निहित स्वार्थों को तब तक स्वेच्छा से छोड़ा गया जब तक कि मजबूर करने के लिए पर्याप्त बल न लगाया गया हो।''

इन सभी कार्यों के आधार पर कहा जा सकता है कि बाबा साहब भीम राव अम्बेडकर शोषितों, दलितों और महिलाओं के मसीहा थे। आज की वर्तमान परिस्थिति के अनुसार भी उनके शब्द उतने ही प्रासंगिक है डा0 अम्बेडकर जी कहते थे

''शिक्षित बनो, संगठित, और संघर्ष करो''

क्योंकि दलितों, महिलाओं की स्थिति में सुधार की आवश्यकता आज भी है। वही पूरे देश के लिए उनके द्वारा लिखा गया संविधान एक प्रकाश पुंज के रूप में कार्य कर रहा है जिसकी ज्योति से मिलने वाले मार्ग पर पूरा देश चल रहा है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. विशारत अमर ''दलितों का हिन्दू होना गुनाह है''– धम्मा प्रकाशन 16/383 त्रिलोकपुरी दिल्ली, 2012, पृष्ठ संख्या 44
2. दैनिक जागरण अखबार दिनांक 05.11.2019 पृष्ठ संख्या–13
3. कश्यप सुभाष, ''हमारा संविधान''– नेशनल बुक ट्रस्ट इण्डिया, ए–5 ग्रीन पार्क, नई दिल्ली–110016, 2000 पृष्ठ सं0–95–104
4. विशारत अमर, ''दलितों का हिन्दू होना गुना है''–धम्मा प्रकाशन, 16/383 त्रिलोकपुरी, दिल्ली, 2012 पृ0सं0–17
5. पूर्ववत् पृ0सं0 13
6. गुप्ता एम0एल0 और शर्मा डी0डी0, ''समाजशास्त्र'' साहित्य भवन, आगरा, 1994, पेज संख्या–547

7. ''भारतीय समाज'' 'NCERT Book' कक्षा–12, NCERT कैंपस श्री अरविन्द मार्ग नई दिल्ली–110016, 2017, पेज सं0–44
8. नेहरू जवाहर लाल, ''भारत की खोज'' NCERT (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद), एन0सी0ई0आर0टी0 कैम्पस श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली 110016, 2019, पेज संख्या–10
9. गुप्त सूर्य प्रकाश, अग्रवाल गोपाल कृष्ण, ''समाजशास्त्र'' साहित्य भवन, सी 17 'साइट सी, सिकन्दरा औद्योगिक क्षेत्र आगरा, 2019 पृ0 सं0– 54, 94
10. पूर्ववत् पृ0सं0 54–94
11. कुमार संजीत, कुमार अजित, अहमद कफील, ''NTA UGC नेट समाजशास्त्र अरिहन्त पब्लिकेशन्स (इण्डिया) लिमिटेड, रामछाया 4577/15 अग्रवाल रोड, दरियागंज, नई दिल्ली–110002, 2019, पृ0 सं0–76
12- https://navbharattimes.indiatimes.com
13- www.prabhasakshi.com
14. youtub.the carvan

The Opinion V.10, N. 20 J-D 2021 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal

भारतीय समाज और मीडिया : एक विमर्श

डॉ0 जयप्रकाश यादव
असिस्टेंट प्रोफेसर, समाजशास्त्र
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी

मीडिया शब्द मीडियम का बहुवचन है जिसका अर्थ माध्यम है। यह मीडिया वह माध्यम है जो लोगों में व लोगों तथा सरकार के बीच अंतः क्रियात्मक संचार स्थापित करवाता है । वर्तमान समाज मीडिया समाज है इसके अंतर्गत समाचार पत्र, पत्रिकाए, टेलीविजन आदि आते हैं जिससे हम लोगों के मध्य सूचनाओं का आदान प्रदान करते हैं देश दुनिया के हालात के प्रति जनता को जागरूक करते हैं और उसे सही या गलत निर्णय लेने की स्थिति तक पहुंचाने में मदद करते हैं। मीडिया ने ही हमारी मूल शक्ति और संवेदनशीलता को रक्षित करने का काम किया है। मीडिया के कारण ही हमारा ध्यान आज अपराधों और समस्याओं की ओर की ओर ज्यादा जाता है । ऐसा नहीं है कि जब मीडिया नहीं थी तब अपराध नहीं होते थे या मानवाधिकारों का हनन नहीं होता था। फर्क सिर्फ इतना ही था कि मीडिया के अभाव में वे घटनाएं प्रकट नहीं हो पाती थी और आज मीडिया के कारण हर घटना का कच्चा चिट्ठा सबके सामने आ जाता है, तब हमें लगता है कि अपराध बहुत बढ़ गया है। समय चाहे आज का हो, चाहे मानव विकास की प्रारंभिक अवस्था का, समाज में शुरू से दो वर्ग रहे हैं– एक सशक्त और दूसरा शोषित। शोषण के खिलाफ आवाज उठाने का काम पत्रकारों द्वारा ही किया जाता रहा है। कागज कलम का प्रचलन बाद में शुरू हुआ कैमरे, माइक, कंप्यूटर और इंटरनेट उसके भी बाद में प्रचलन में आए लेकिन पत्रकारिता का पेशा सबसे पहले शुरु हो चुका था। जब पत्र–पत्रिकाएं नहीं थी तब भी पत्रकार थे क्योंकि खबरों के आदान–प्रदान की मानवीय प्रवृत्ति का परिमार्जन कर खबरों को जनहित के मुताबिक डालकर समाज तक पहुंचाया गया होगा तभी मानव समाज पर उन खबरों का असर पड़ना प्रारंभ हुआ होगा, यही पत्रकारिता एवं मीडिया की शुरुआत थी।

आजकल हर दिन **चाइल्ड एब्यूज** की खबरें निरंतर मीडिया के द्वारा सामने आती रहती हैं वर्तमान समय में बच्चों के साथ छेड़खानी तथा यौन शोषण के मामले बहुत ज्यादा सुनने को मिल रहे हैं घर से बाहर छोड़िए घर में भी बच्चे सुरक्षित नहीं है। लड़का हो या लड़की दोनों की सुरक्षा को लेकर माता–पिता भयभीत है उन्हें इस तरह की दुर्घटनाओं से बचाने के लिए इस बारे में शिक्षित किया जाना जरूरी है की तुम्हें अपने शरीर की रक्षा खुद करनी होगी। बच्चों को बताएं कि यदि कभी उनके साथ ऐसा होता है तो ऐसी स्थिति में उन्हें अपना बचाव कैसे करना चाहिए बच्चों को बैड टच के बारे में बताएं, बच्चों की सुरक्षा को लेकर पत्र–पत्रिकाओं में भी आए दिन लेख निकलते हैं। टी.वी. पर भी कई सीरियल इस प्रकार से प्रसारित हो रहे हैं जो व्यक्ति की जागरूकता को बढ़ाने में महती भूमिका निभा रहे हैं तथा ऐसे अपराधों को करने के लिए भी उपाय बता रहे हैं जैसे–**सावधान इंडिया, क्राइम पेट्रोल** इत्यादि। सोशल नेटवर्किंग साइट आज युवाओं की जिंदगी का एक अहम हिस्सा बन गया है। इन युवाओं को आपस में जोड़ने का काम सोशल मीडिया बड़ी तीव्र गति से कर रहा है क्योंकि युवाओं में सोशल नेटवर्किंग साइट का क्रेज तेजी से बढ़ रहा है। भारत सहित दुनिया के सभी देशों में सोशल मीडिया ने सिर्फ व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं बल्कि कई सामाजिक व गैर सरकारी संगठनों ने भी अपने अभियानों को मजबूती दी है। सूचना के आदान–प्रदान करने, विभिन्न क्षेत्रों और संस्कृतियों के लोगों को आपस में जोड़ने, भागीदार बनाने और सबसे महत्वपूर्ण यह है कि नए ढंग से संपर्क करने में, युवा अपना हाथ बढ़ा सकता है और सोशल मीडिया को एक सशक्त उपकरण के रूप में तैयार कर सकता है, वही सोशल मीडिया साइट्स के जरिए

दुनिया भर में अपनी समान मानसिकता वाले लोगों को जोड़कर सामाजिक सरोकार दायित्व को पूरा कर रहा है।

भारतीयों पर मीडिया का नकारात्मक प्रभाव भी पड़ रहा है जिसकी वजह से आज युवा पश्चिमी सभ्यता एवं संस्कृति का अंधाधुंध अनुसरण करने में लगा है। सोशल मीडिया पर जो समय हम और आप खर्च कर रहे हैं उस की सही कीमत शायद किसी को नहीं है ना ही किसी को उसका कोई अंदाजा है इसकी वजह यह है कि हमें खुद अपने समय की कीमत नहीं मालूम है आज की ब्यस्त और भागदौड़ भरी दुनिया में हम अपने समय को मैनेज नहीं कर पाते। हम यह नहीं सोच पाते कि जो समय हमारे पास है उसका किस तरीके से सार्थक उपयोग कर सकते हैं, यही वजह है कि सोशल मीडिया पर गुटबाजी में हमारा कितना समय बर्बाद हो जाता है इसका हिसाब भी हम नहीं रख पाते शायद हम हिंदुस्तानियों के पास धन दौलत की कमी भले ही हो लेकिन समय बेशुमार है। जिसका हम भरपूर इस्तेमाल ऐसे निरर्थक कामों में करते हैं जैसे–सोशल मीडिया पर फिजूल की चौटिंग अक्सर किशोरों और युवाओं में ऐसा देखा जाता है। जो सोशल मीडिया पर ज्यादा से ज्यादा मशगूल रहते हैं दोस्तों से गप्पे लड़ाने में या फिर गेमिंग और ऐसी हरकतों में जिनसे उनके कैरियर या जिंदगी में कोई भी फायदा नहीं हो सकता है।

मीडिया ही एक ऐसा माध्यम है जो जन सामान्य की आवाज बनता जा रहा है चाहे वह किसी भी प्रकार के मुद्दे हो जैसे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, शैक्षिक, धार्मिक आदि इन सभी मुद्दों को मीडिया प्रमुखता से उठा रहा है जो मुद्दे सरकारी तंत्र से जुड़ जाते हैं, मीडिया उन मुद्दों को उठाते हुए जन सम्मान की आवाज बन जाता है। इस कड़ी में हम कुछ मुद्दों का उल्लेख करना चाहेंगे, वह दिल्ली का निर्भया कांड हो या चाहे श्री अन्ना हजारे जी का जनलोकपाल के लिए आंदोलन रहा हो इन सभी को उठाती हुई मीडिया ने प्रमुखता से सरकार पर दबाव बनाया जिसके कारण संविधान में संशोधन तक करना पड़ा। आधुनिक समय में मीडिया अपने कर्तव्यों को पूरी जिम्मेदारी के साथ निर्वहन कर रहा है अर्थात हम कह सकते हैं कि मीडिया आज के वर्तमान दौर में जन सामान्य की आवाज बनता जा रहा है एवं जन सामान्य भी अपनी–अपनी समस्याओं को लेकर मीडिया के माध्यम से सरकार तक पहुंचाने में सफल रहा है।

मीडिया हमारे भारतीय समाज के लिए जितना वरदान है उतना ही अभिशाप भी है मीडिया के द्वारा भारतीय युवाओं का पश्चिमीकरण हो रहा है मीडिया के द्वारा लोगों को जहां सही शिक्षा और जानकारी प्राप्त होती है टीवी, रेडियो प्रोग्राम के द्वारा स्वास्थ्य, शिक्षा, पर्यावरण तथा अन्य जानकारियों को प्राप्त करते हैं। वही टीवी में प्रसारित होने वाले सीरियल–**क्राइम पेट्रोल, सावधान इंडिया, सी.आई.डी.** इत्यादि से हमारी युवा पीढ़ी नए–नए अपराध करने की तकनीकी भी सीख रही है। मीडिया के द्वारा लोगों को अपना टैलेंट पूरी दुनिया के सामने रखने का अच्छा प्रचार मिला है या मनोरंजन का बहुत अच्छा साधन भी है इसमें दिखाए जाने वाले टीवी सीरियल, समाचार, गाने, फिल्मों के द्वारा लोगों का मनोरंजन होता है परंतु वर्तमान समय में मीडिया का दुरुपयोग भी हो रहा है मनोरंजन के लिए अधिक समय तक कान में हेडफोन लगाने से व्यक्ति की श्रवण शक्ति कम होती जा रही है तथा युवा पीढ़ी सड़क पर वाहन चलाते वक्त भी हेडफोन का उपयोग करती है जिससे वर्तमान समय में सड़क दुर्घटनाएं भी हो रही हैं।

मीडिया के द्वारा आज का युवा एकाकी होता जा रहा है, अपने परिवार के सदस्यों जैसे, दादा–दादी, नाना– नानी, माता–पिता, भाई–बहन आदि से कटता जा रहा है तथा अपना ज्यादा से ज्यादा समय संचार मीडिया तथा सोशल मीडिया पर खर्च कर देता है। आज का युवा सोशल मीडिया पर पोर्न वेबसाइट, गेम, फेसबुक, व्हाट्सएप, ट्विटर, इंस्टाग्राम, टेलीग्राम इत्यादि में अपना कीमती वक्त बर्बाद कर रहा है तथा अपने आप को भी बर्बाद कर रहा है। मास–मीडिया,सोशल–मीडिया एक तरह से युवा वर्ग की दिनचर्या हो गई है इसके बिना युवा पीढ़ी नहीं रह सकती, इसने इंसान के दिमाग का विकास भी रोक

दिया है। आज मास मीडिया, सोशल मीडिया पर बहुत से अभद्रता युक्त चौनल भी आते हैं यह हमारे भारतीय समाज के लिए अभिशाप की तरह हैं जो देश की युवा वर्ग को विचलित कर सकते हैं इसके लिए सरकार को कड़े कदम उठाने चाहिए। अतः वर्तमान समय में मीडिया जितना प्रभाव कारी है उतना ही विस्फोटक भी है। आज मीडिया का विस्तार इतनी तेजी के साथ हो रहा है कि 21वीं सदी को सूचना समाज के रूप में जाना जा रहा है, इस बात को राजनीतिक, प्रशासनिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक जगत ने बेझिझक स्वीकार कर अपने साथ कर लिया है। आज मीडिया का प्रभाव बालक एवं बालिकाओं पर तेजी से पड़ा है। 1991 से मीडिया ने अपना रूप परिवर्तित करना प्रारंभ किया है जिसके चलते कारपोरेट जगत ने अपना प्रभाव दिखाना शुरू किया तथा अपने हितों के लिए युवाओं को अनैतिकता और आनंद की ओर धकेलना शुरू किया, किशोर वर्ग के आनंद के लिए नैतिक और अनैतिक सभी प्रकार की सामग्री दी जाने लगी है।

आज लोकयिप्र मीडिया के प्रभाव के कारण विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पत्ति पर भी प्रभाव देखने को मिलता है यह देखा गया है कि शैक्षिक दृष्टि से विद्यार्थी में बहुत ही अंतर पाया जाता है कहीं शैक्षिक रूप से अधिक पिछड़े विद्यार्थी मिलते हैं तो कहीं अधिक प्रतिभाशाली विद्यार्थी मिलते हैं। इस भेद को जानने के लिए यह समझना आवश्यक हो जाता है कि पॉपुलर मीडिया किस हद तक विद्यार्थियों के कार्यों को प्रभावित कर रहा है। विद्यार्थियों में पर्याप्त तर्कशीलता और विचारशीलता होते हुए भी वह उनका प्रयोग नहीं कर पाते क्योंकि मीडिया के प्रभाव में आकर कोई नया अध्ययन नहीं कर पाते या करना ही नहीं चाहते जिससे उनके जीवन में प्रगति हो सके, वह पूरी तरह से मीडिया पर निर्भर हो गए हैं, आज के समय में विद्यार्थियों को सोचने का मौका नहीं दिया जाता, उनके मन और मस्तिष्क पर वर्तमान समय में मीडिया ने पूरी तरह से कब्जा जमा लिया है उनकी संवेदनाएं मर चुकी हैं किशोर और किशोरियां सोशल मीडिया की गिरफ्त में इतने ज्यादा हैं कि उन्हें समाज की समस्याओं और परिवार की समस्याओं से कोई लेना देना नहीं है। आज आवश्यकता इस बात की है कि युवा वर्ग को मीडिया एवं बाजारवाद की चकाचौंध दुनिया से दूर कर उनको रचनात्मक एवं सृजनात्मक कार्यों के प्रति प्रोत्साहित किया जाए उनके बीच गीत–संगीत, कला,साहित्य, रंगकर्मों संवाद आपसी मेल मिलाप एवं जीवन मूल्यों के प्रति चेतना का संचार कर उनके व्यक्तित्व का निर्माण किया जाए जिससे वे बेहतर समाज का निर्माण करने योग्य बन सके।

यदि देखा जाए तो पिछले दो दशकों से मीडिया एवं सोशल मीडिया का सामाजिक संबंधों के प्रसार में अति सक्रिय भूमिका दिखाई देती है या अति सक्रिय भूमिका रही है। इसका कारण संचार व्यवस्था का नित्य विकसित होना है संचार ने सामाजिक संपर्क को समूह, समुदाय एवं राष्ट्र की सीमा से परे बना दिया है और वैष्वीकरण की संकल्पना विष्वग्राम को चरितार्थ कर रहा है। सोशल मीडिया का नकारात्मक एवं सकारात्मक दोनों पहलू हमारे सामने आ रहे हैं। सामाजिक संबंधों की सुदृढ़ता एक ओर मीडिया एवं सोशल मीडिया कर रहा है तो दूसरी तरफ इस ने इसे प्रभावित भी किया है, वर्ष 2013 में देश भर में इनफॉरमेशन टेक्नोलॉजी एक्ट और इंडियन पेनल कोड की विभिन्न धाराओं के तहत 5212 मामले दर्ज किए गए जिनमें से 1203 मामले सोशल साइट्स पर आपत्तिजनक सामग्रियों को अपलोड करने से संबंधित है। आपराधिक प्रवृत्ति वाले, दूसरों के अकाउंट को हैक कर आपत्तिजनक सामग्री डाल देते हैं। फेसबुक पर 13 वर्ष से कम उम्र के बच्चों का अकाउंट खोलना वर्जित है क्योंकि इनके ऊपर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस संदर्भ में किए गए एक सर्वे रिपोर्ट बताता है कि बच्चों द्वारा किए जा रहे फेसबुक प्रयोग कर्ताओं में ज्यादा बच्चों की उम्र 8 से 13 वर्ष की है इन बच्चों में अधिकांश बच्चों के माता–पिता नौकरी पेशा वाले हैं जो बच्चों को समय नहीं देते जिससे वे फेसबुक और अन्य सोशल मीडिया साइट्स द्वारा अपना मनोरंजन या समय व्यतीत करते हैं।

अनेक मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि सोशल नेटवर्किंग साइट्स के प्रयोगकर्ताओं को नकारात्मक प्रभाव का सामना करना पड़ता है। एक और इसके अत्यधिक प्रयोग से मनोवैज्ञानिक विकृतियों का लोग शिकार होते हैं तो दूसरी ओर घंटों इससे चिपके रहने से अपने घर परिवार को समय नहीं दे पाते जिससे पारिवारिक एकता एवं स्वभाव पर प्रतिकूल प्रभाव परिलक्षित होने लगता है। एस. एस. के. एम. अस्पताल के मनोरोग चिकित्सक डॉ सुजीत ने अपना विचार व्यक्त किया कि सोशल मीडिया एक परोक्ष माध्यम है जिसके इस्तेमाल से लोग परोक्ष रूप से दूसरे लोगों से जुड़े रहते हैं, लेकिन जो असल समाज है उससे अलग–थलग पड़ जाते हैं फल स्वरुप उनमें सामाजिक गुणों का विकास नहीं हो पाता। इस प्रकार सर्वाधिक प्रभाव बच्चों पर हो रहा है जिससे बच्चों के ऊपर सोशल मीडिया के प्रभाव का अध्ययन करना महत्वपूर्ण हो जाता है।

आज का दौर युवा शक्ति का दौर है। इन युवाओं को बड़ी सक्रियता से जोड़ने का काम सोशल मीडिया कर रहा है। युवा वर्ग में सोशल नेटवर्किंग साइट का क्रेज दिन पर दिन बढ़ता जा रहा है। आज सोशल नेटवर्किंग, दुनिया भर में इंटरनेट पर होने वाली नंबर वन गतिविधि बन गई है। एक परिभाषा के अनुसार सोशल मीडिया को परस्पर संवाद का वेब आधारित एक ऐसा गतिशील मंच कहा जा सकता है जिसके माध्यम से लोग संवाद करते हैं, आपसी जानकारियों का आदान प्रदान करते हैं। आज सोशल नेटवर्किंग साइट्स युवाओं की जिंदगी का एक अहम अंग बन गया है यह सही है कि इसके माध्यम से लोग अपनी बात बिना किसी रोक–टोक के देश और दुनिया के हर कोने तक पहुंचा सकते हैं परंतु इससे अपराधों में भी वृद्धि हुई है। सोशल मीडिया का जन्म 1995 में माना जाता है उस समय क्लासमेट्स डॉट कॉम नाम से एक साइट शुरू की गई थी। सोशल मीडिया के क्षेत्र में सबसे बड़ा बदलाव आया फेसबुक और ट्विटर के आने से। मार्क जुकरबर्ग ने 2004 में हार्वर्ड विष्वविद्यालय के छात्रों के लिए फेसबुक को विकसित किया था, धीरे–धीरे इसका विस्तार दूसरे कॉलेजों और विष्वविद्यालयों तक हुआ और 2005 में अमेरिका की सरहद लांघकर यह विष्व के दूसरे देशों में पहुंच गया। ऐसी ही कहानियां दूसरी सोशल नेटवर्किंग साइट्स की भी हैं विष्व भर में लगभग 200 सोशल नेटवर्किंग साइट्स हैं जिनमें. फेसबुक, व्हाट्सएप, इंस्टाग्राम, (फोटो, वीडियो शेयरिंग साइट्स) माई स्पेस, लिंक्डइन, फ्लिकर, पिनइंटरेस्ट सबसे अधिक लोकप्रिय है। युवाओं के जीवन में सोशल नेटवर्किंग साइट्स क्रांतिकारी परिवर्तन लाया है। इंटरनेट एंड मोबाइल एसोसिएशन ऑफ इंडिया द्वारा जारी आंकड़ों के अनुसार भारत के शहरी इलाकों में प्रत्येक चार में से तीन व्यक्ति सोशल मीडिया का किसी न किसी रूप में इस्तेमाल करते हैं। इसी रिपोर्ट में प्रमुख शहरों के आंकड़ों के आधार पर यह भी बताया गया है कि 77 प्रतिषत उपयोगकर्ता सोशल मीडिया का इस्तेमाल मोबाइल से करते हैं।

सोशल साइट्स ने स्कूली दिनों के साथियों को मिलवाया तो आज देश–दुनिया के कोने में रहने वाले मित्र भी एक–दूसरे को फेसबुक पर ढूंढ रहे हैं। सोशल मीडिया के द्वारा मित्रों से वास्तविक जीवन में मुलाकात भले ही ना हो पाए पर सोशल साइट्स पर हमेशा जुड़ाव रहता है। सोशल मीडिया की सफलता इससे भी देखी जा सकती है कि परंपरागत मीडिया भी अब फेसबुक और ट्विटर जैसे माध्यमों पर न सिर्फ अपनी उपस्थिति दर्ज करा रहा है बल्कि विभिन्न मुद्दों पर लोगों द्वारा व्यक्त की गई राय को इस्तेमाल भी कर रहा है। इसमें कोई संशय नहीं है कि सोशल मीडिया का मंच आज अभिव्यक्ति का नया और कारगर माध्यम बन चुका है इससे जुड़े लोग बेबाकी से अपनी राय इस मंच के माध्यम से व्यक्त करते हैं। हालांकि सोशल मीडिया के प्रति दीवानगी कई मायनों में सार्थक नजर आती है वहीं इसके दुरुपयोग के मामले भी सामने आते रहे हैं। बीते समय में सांप्रदायिक हिंसा, दंगों, अफवाह फैलाने के मामलों में सोशल मीडिया के

माध्यम का दुरुपयोग सामने आया है इससे सतर्क रहने की जरूरत है क्योंकि पिछले कुछ समय में इसके भयावह दुष्परिणाम सामने आ चुके हैं–उत्तर प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, राजस्थान, तमिलनाडु, कर्नाटक एवं मध्य प्रदेश जैसे राज्यों में सांप्रदायिक तनाव भड़काने की कई घटनाएं सामने आई और सोशल साइट्स पर जमकर कमेंट आए, अभी बीते दिनों वैष्विक महामारी कोरोना वायरस पर मीडिया ने लोगों को इसके प्रति जागरूक किया एवं इससे बचाव के तरीकों पर महत्वपूर्ण जानकारियां प्रदान कर इसके प्रसार को रोकने में मदद की, वहीं कुछ तुच्छ एवं कुंठित मानसिकता के लोगों ने दिल्ली,मुंबई एवं अन्य कई शहरों में सोशल मीडिया के माध्यम से प्रवासी मजदूरों के बीच अफवाह फैलाकर लाक–डाउन को विफल करने का कुछ प्रयास किया। लोगों की अभिव्यक्ति के अधिकार का पूरा समर्थन किया जाना चाहिए मगर सुरक्षा की कीमत पर बिल्कुल नहीं। भारत सहित दुनिया के विभिन्न देशों में सोशल मीडिया ने सिर्फ व्यक्तिगत स्तर पर ही नहीं बल्कि कई सामाजिक और गैर सामाजिक संगठनों के अभियानों को मजबूती दी है।

जिन देशों में लोकतंत्र का गला घोंटा जा रहा है वहां अपनी बात कहने के लिए लोगों ने सोशल मीडिया का लोकतंत्रीकरण भी किया है। हाल के वर्षों में अरब जगत में हुई क्रांतियो में सोशल मीडिया ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। जहां तक युवाओं की बात है उन पर सोशल मीडिया का प्रभाव बहुत ही गहरा है, यह वह वर्ग है जो सबसे ज्यादा सपने देखता है और उन सपनों को पूरा करने के लिए जी जान लगा देता है जहां एक तरफ सोशल मीडिया युवाओं को नई दिशा दे रहा है तो दूसरी ओर युवा वर्ग अपने सपनों को साकार करने के लिए इस माध्यम का उपयोग कर रहा है। सकारात्मकता के साथ–साथ इसका नकारात्मक पहलू भी है।

युवाओं को सोशल नेटवर्किंग साइट्स का नशा सा हो गया है सोशल साइट्स पर दिन में कई बार स्टेटस अपडेट करना, घंटों तक मित्रों के साथ चौटिंग करना जैसी आदतों ने युवा पीढ़ी को काफी हद तक प्रभावित किया है घंटों तक फेसबुक, ट्विटर, व्हाट्सएप ऐसी वेबसाइट पर समय बिताने से न केवल उनकी पढ़ाई प्रभावित हो रही है बल्कि कुछ नया करने की रचनात्मकता भी समाप्त हो रही है। सोशल नेटवर्किंग साइट्स के माध्यम से तमाम अश्लील सामग्री और भड़काऊ बातें भी युवाओं तक प्रसारित की जा रही है जो उनके मन मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव डालती हैं इससे युवाओं को वास्तविक जीवन को भुलाकर आभासी जीवन में रहने को मजबूर कर दिया है। देश में कई ऐसी घटनाएं सामने आई हैं कि 40 से 45 वर्ष का व्यक्ति अपनी 20 से 22 वर्ष की कोई स्मार्ट फोटो डालकर अपना प्रोफाइल बनाता है, उसके प्रस्तुतीकरण की क्षमता से कई लड़कियां आकर्षित हो जाती हैं फिर बातों–बातों में ही मिलना–मिलाना, शादी का झांसा, शारीरिक संबंध और ब्लैक मेलिंग में परिणति होती है। नये–नये पोज का शेल्फी सेकंड में सोशल साइट्स पर अपलोड कर दिया जाता है। किसी परिचित या अपरिचित मित्र का कमेंट आता है वाउ, हाउस स्वीट, वेरी नाइस, आप रिप्लाई करते हो थैंक यू फिर अनाप–शनाप कमेंट जरा। सोचिए अगर कोई आपकी फोटो पर क्या हॉट है कमेंट करता है तो आप दिल या इस्माइल का इमोजी भेजते हो मगर वही व्यक्ति आपके सामने आकर बोले तो छेड़खानी का अपराध है, जरा विचार कीजिए कि हम कितना आभासी जीवन व्यतीत कर रहे हैं। युवावस्था एक ऐसी अवस्था होती है जिसमें व्यक्ति को अपने उद्देश्य के बारे में पता नहीं होता जिसके कारण उसके गलत संगति में पड़ने में जरा सा भी समय नहीं लगता। सोशल मीडिया के द्वारा युवाओं को पश्चिमी सभ्यता का अंधाधुंध अनुकरण करना आधुनिकता का मापदंड लगने लगा है इससे हमारे देश के युवाओं की पूरी जीवन शैली प्रभाववित दिखाई पड़ रही हैं जिसमें रहन–सहन, खान–पान, वेशभूषा और बोलचाल सभी समग्र रूप से शामिल है। मद्यपान और धूम्रपान उन्हें एक फैशन लगने लगा है, नैतिक मूल्यों का पतन आपसी रिश्तों,नातों में बढ़ती दूरियां और परिवारों में बिखराव की स्थिति इसके दुखदाई परिणाम हैं। आज राष्ट्र के समक्ष सबसे बड़ा यक्ष प्रश्न यह है कि युवा शक्ति का सही

प्रयोग कैसे करें। इस प्रश्न का उत्तर सोशल मीडिया में छिपा है यदि हमारे देश का युवा चाहे तो सोशल मीडिया के द्वारा स्वयं को एक समर्थ समान व्यक्ति बना सकता है यहां वह अपनी अच्छाइयों व रचनात्मकता से रूबरू हो सकता है।

सूचना के आदान–प्रदान में, जनमत तैयार करने, विभिन्न क्षेत्रों और संस्कृतियों के लोगों को आपस में जोड़ने, भागीदार बनाने में युवा अपना हाथ बढ़ा सकता है और सोशल मीडिया का एक सशक्त उपकरण के रूप में उपयोग कर सकता है इसमें दो राय नहीं है कि सोशल मीडिया आज के लोगों के लिए अपरिहार्य हो गया है।लेकिन इसके नकारात्मक पहलू से भी बचने की जरूरत है क्योंकि जब किसी भी चीज का दुरुपयोग होने लगता है तो वह वरदान नहीं अभिषेक बन जाता है। इसमें कोई शक नहीं है कि मीडिया ने समय–समय पर अपना काम किया है और समाज को सच का आइना दिखाया है। आज समाचार पत्र या न्यूज़ चौनल लोगों की जरूरतें हो गई है इसलिए यह एक अच्छा अवसर है कि मीडिया समाज की बुराइयों को हटाकर स्वस्थ समाज का निर्माण करें और भारत को विष्व स्तर पर एक अलग पहचान दिलाये, यह मीडिया का दायित्व भी है। आज मीडिया ही एकमात्र क्षेत्र इसमें हो रही अनियमितताओं को इसी क्षेत्र के लोग उजागर कर मीडिया में पारदर्शिता बनाए हुए हैं यह समाज के लिए अच्छी बात है और इससे यह पता चलता है कि मीडिया समाज हित में कार्य कर रही।

किसी भी देश की प्रगति और विकास में मीडिया का बहुत बड़ा योगदान होता है। यदि कहा जाए कि मीडिया समाज का निर्माण व पुनर्निर्माण करता है तो यह गलत नहीं होगा। इतिहास में ऐसे अनगिनत उदाहरण पड़े हैं जब मीडिया की शक्ति को पहचान लोगों ने उसका उपयोग युग परिवर्तन के भरोसेमंद हथियार के रूप में किया है। अंग्रेजों की दासता से सिसकते भारतीयों में देश भक्ति व उत्साह भरने का जज्बा उत्पन्न करने में मीडिया का बहुत बड़ा योगदान था। यदि मीडिया ने आने वाले समय में पूरी पारदर्शिता और दूरदर्शिता के साथ समाज के लिए कार्य किया तो वह दिन दूर नहीं जब हमारा राष्ट्र दुनिया के सामने मिसाल बन जाएगा। भारतीय समाज पर मीडिया का प्रभाव काफी मात्रा में देखने को मिलता है यदि मीडिया एक मिशन की तरह कार्य करें और जनता में जागरूकता का भाव पैदा करे, तो वास्तव में मीडिया लोकतंत्र के लिए एक वरदान साबित हो जाएगा। आज भी मीडिया की ताकत के सामने बड़े से बड़ा राजनेता, उद्योगपति तथा सेलिब्रिटी आदि सभी सिर झुकाते हैं, मीडिया का जन जागरण में बहुत योगदान होता है, मीडिया हमारे लिए वरदान की तरह है। परंतु जैसे फूल के साथ कांटे होते हैं उसी प्रकार मीडिया भी वरदान ही नहीं अभिशाप भी है।

संदर्भ सूचीः–

1. पाठक धीरेंद्र एवं लाल मनोहर, मीडिया एवं समाज (2016), यूनिवर्सिटी पब्लिकेशंस, नई दिल्ली।
2. राय नीरज कुमार, इंटरनेट, सोशल मीडिया और सामाजिक सशक्तिकरण (2019), कुमुद पब्लिकेशंस, दिल्ली।
3. राजाराम कल्पना, निबंध बोध (2016), स्पेक्ट्रम बुक प्रा. लि. जनकपुरी, नई दिल्ली।
4. ज्ञानदीप, वार्षिक पत्रिका संयुक्तांक(2014–2021), स्वतंत्रता संग्राम सेनानी विश्राम सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चुनार, मिर्जापुर ।
5. निबंध मंथन (2016–17),मंथन प्रकाशन, इलाहाबाद।
6. राय नीरज कुमार, सोशल मीडिया इश्यूज एंड चौलेंजेस (2020), एवन पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली।
7. विद्यावार्ता, इंटरनेशनल जर्नल, ईश्यू 40, वॉल्यूम 4, अक्टूबर–दिसंबर (2021), हर्षवर्धन पब्लिकेशंस, बीड, महाराष्ट्र।
8. सामाजिक विमर्श, समाज विज्ञान जर्नल, संयुक्तांक, वर्ष 2012, प्रकाशक समाजशास्त्र विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

ग्रामीण महिलओं के सशक्तिकरण मे मनरेगा की भूमिका

दुर्गेश कुमार पाण्डेय
असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाज शास्त्र विभाग,
महाराज बलवन्त सिंह पी0 जी0 कालेज,
गंगापुर, वाराणसी, उ0प्र0।

सारांश–

भारत में सामाजिक एवं आर्थिक वृद्धि एवं विकास में बहुत बड़ा भाग ग्रामीण परिवेश का है, परन्तु विकास के प्रतिस्पर्धा के दौड़ में आज भी भारतीय गाँव पिछड़े हुए हैं। जिनके विकास हेतु भारत सरकार द्वारा समतावादी समाज की स्थापना करना मुख्य उद्देश्य है। जहाँ पर महिला–पुरुष, समाजों, समूहों, वर्गों इत्यादि क्षेत्रों में विषमता न हो। ग्रामीण परिपेक्ष्य पर दृष्टि डालें, तो प्रतीत होता है कि ग्रामीण विकास के आँकड़े, के परिणामतः ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्रों के बीच असमानताएँ दिखायी पड़ती है। ग्रामीण क्षेत्रों में गाँव एवं शहरों के बीच असमानता को समाप्त करने, खाद्य सुरक्षा प्रदान करने एवं विशेषकर महिलाओं को आधारभूत सुविधाएँ उपलब्ध कराने के लिए सामाजिक एवं आर्थिक आधार पर लोगों को सशक्त करना जरूरी है।

महिला सशक्तिरकण एक महत्त्वपूर्ण समकालीन विमर्श है। महिला सशक्तिकरण का अभिप्राय महिलाओं का पुरुषों के समान वैधानिक, राजनीतिक, शारीरिक, मानसिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में निर्णय लेने की स्वायतता है। अर्थात् महिलाओं में इस प्रकार की क्षमता का विकास करना है। जिससे वे अपने जीवन का निर्वाह अपनी इच्छानुसार कर सकें। महिला सशक्तिकरण पर प्रकाश डालते हुए सेन बटली वाला (2004) का कहना है कि ''सशक्तिकरण एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें शक्तिविहीन शक्ति संपन्न होने का प्रयास करता है। क्योंकि संसाधन तथा विचारधारा पर नियंत्रण कर सकें। विश्व बैंक (2004) के अनुसार सशक्तिकरण व्यक्ति या समूह की क्षमता को बढ़ाना है ताकि वह अपनी इच्छानुसार से कार्यों को चुनने और संपादित कर सकें।

मुख्य शब्द– ग्रामीण महिला, सशक्तिरकण, शिक्षा, अधिकार, पंचायती राज।

भूमिका

ग्रामीण विकास के अर्न्तगत विशेषकर महिला सशक्तिकरण के लिए योजनायें अति प्रासंगिकता है। भारत सरकार द्वारा स्वतंत्रता के पश्चात् से महिलाओं में सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक विकास हेतु योजनाओं के संचालन हेतु नियोजित परिवर्तन के मार्ग से विकास की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। जिसके अन्तर्गत पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से विकास से जुड़े विभिन्न कार्यक्रमों का सृजन किया गया है। विकास के क्रम को रेखांकित करें तो विकास कार्यक्रमों का प्रारम्भ सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952) से होकर वर्तमान परिपेक्ष्य में रोजगार के तौर पर मनरेगा एक वैश्विक स्तर पर प्रमुख योजना है। महिला विकास से सम्बन्धित योजनाओं का सार्थकता साफ तौर पर दिखायी पड़ती है उन सभी योजनाओं में मनरेगा ग्रामीण विकास के साथ महिला सशक्तिकरण में महत्वूपर्ण योगदान दिया है। प्रमुख कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य ग्रामीण समाज से जुड़े विभिन्न समस्याओं जैसे बेरोजगारी, गरीबी, भूखमरी, अशिक्षा, कुपोषण इत्यादि को समाप्त करके भारत को एक विकसित राष्ट्र की श्रेणी में लाना है। ग्रामीण विकास के लिए मनरेगा के साथ अन्य कार्यक्रमों के उद्देश्यों की व्याख्या से प्रतीत होता है कि विकास एवं परिवर्तन में

विशेष सफलता नहीं मिली है। योजनाओं की उपलब्धियों की समीक्षा करने के पश्चात् कार्यक्रमों की कमियों की जानकारी नीति निर्मातओं को ज्ञात हुआ। जिसके लिए भविष्य के लिए प्रयोजित योजनाओं में सुधारात्मक दृष्टिकोण अपनाया जा रहा है। प्रमुख योजनाओं में मनरेगा योजना ग्रामीण विकास के साथ ही रोजगार का अवसर प्रदान करता है, जिसमें मुख्यतः इसके क्रियान्वयन के माध्यम से महिला सशक्तिकरण के साथ ही ग्रामीण समस्याओं में जैसे बेरोजगारी, आर्थिक पिछड़ापन, गरीबी आदि से छुटकारा पाकर विकास को अवसर प्रदान होता है।

स्वतंतत्रा के पूर्व ग्रामीण विकास

भारत में ग्रामीणों के लिए विविध दृष्टिकोणों के प्रयोग करने का लम्बा इतिहास रहा है जिसके माध्यम से विकास क्रमबद्ध तरीके से होता रहा है। यहाँ तक कि स्वतंत्रता पूर्व से ग्रामीण पुनर्निर्माण के बहुत से प्रयोग राष्ट्रवादी विचारकों और समाज सुधारकों द्वारा आरम्भ किए गए। इन प्रयोगों के प्रमुख माध्यम से ग्रामीण विकास होता रहा है। उनमें **एफ0 एल0 ब्राउन** का गुड़गावं प्रयोग (1920) स्पेन्सर **का माथडिम प्रयोग** (1921), **कवि रविन्द्रनाथ टैगोर** का श्री निकेतन का प्रयोग (1946) एवं **एल्बर्ट मेयर का मार्गदर्शन** पर परियोजना उल्लेखनीय है। समाज सुधारकों एवं मिशनरीज के इन प्रयोगों के अतिरिक्त सरकार के विभिन्न क्षेत्रों में जैसे सहकारिता, सिंचाई, स्वास्थ्य, शिक्षा ने भी अपने अधिकार क्षेत्र में अपने तरीकों से ग्रामीण समस्याओं का सुलझाने का प्रयोग किया गया है।

स्वतंत्रता के पश्चात् ग्रामीण विकास

ग्रामीण विकास के लिए स्वतन्त्रता के पश्चात् समयबद्ध कार्यक्रम अपनाए गये। पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से विकास कार्य से ग्रामीण क्षेत्रों में परिवर्तन आया है। जिसके अन्तर्गत सामुदायिक विकास कार्यक्रम (1952) एवं तत्पश्चात् पंचायती राज कार्यक्रमों में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका रहा है। सन् 1950 में जब हमारा संविधान लागू हुआ तो अनुच्छेद 40 में निर्देश दिया गया कि राज्य ग्राम पंचायतों के निर्माण के लिए कई कदम उठाया गया और उन्हें इतनी शक्ति और अधिकार प्रदान करेगा, जिसमें कि वे स्वशासन की इकाई के रूप में कार्य कर सकें। सन् 1952 में नेहरू के पहल पर सामुदायिक विकास कार्यक्रम एवं राष्ट्रीय प्रसार सेवा जैसे कार्यक्रम चलाए गए।[6] लेकिन कुछ ही समय पश्चात् इसकी असफलता पर यह अनुभव किया गया कि जब तक लोग स्वयं प्रयास नहीं करते और उन्हें ऐसा करने के लिए स्वतंत्रतापूर्वक उत्तरदायित्व नहीं सौपा जाता है तब तक ग्रामीण विकास नहीं हो सकता है।

सामुदायिक विकास कार्यक्रम की जाँच के लिए वर्ष 1957–58 में बलवंत राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति बनाई गई, जिसके रिपोर्ट के माध्यम से बताया गया कि कार्यक्रम की बुनियादी त्रृटि यह रही कि जनता को सहयोग नहीं प्राप्त हुए। समिति ने यह सिफारिस की। लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण और सामुदायिक विकास कार्यक्रमों को सफल बनाने के लिए त्रिस्तरीय पंचायती राज संस्थाओं की तुरन्त शुरूआत की जानी चाहिए। जिसमें विकास के लिए हर स्तर पर ग्राम पंचायत खण्ड स्तर की पंचायत समिति और जिला स्तर पर पंचायत समिति और जिला स्तर पर जिला परिषद का विस्तार किया गया।

भारत सरकार द्वारा ग्रामीण विकास के लिए समय–समय पर उनके लिए समितियों का गठन करके ग्रामीण विकास को गति प्रदान किया। जिसमें 12 सितम्बर 1977 में अशोक मेहता समिति बनाई गयी लोकतान्त्रिक विकेन्द्रीकरण का ऐसा प्रतिमान प्रस्तुत किया। जिसमें पंचातयी राज संस्था के त्रि–स्तरीय स्वरूप की अनुशंसा की गयी। ग्रामीण विकास की प्रशासनिक व्यवस्था एवं निर्धनता उन्मूलन समस्याओं हेतु 1985 में जे0वी0 राव समति का गठन किया गया। 16 जून 1986 में लक्ष्मीमल्ल सिंधवी समिति का गठन किया गया, जिसके अन्तर्गत जिला परिषदों को योजनाएँ एवं विकास का अभिकरण बनाने की अनुशंसा की गयी। 1990 में ग्रामीण सुविधाओं एवं आवश्यकताओं से जुड़े सभी प्रशासनिक मामलों विशेषकर, शिक्षा, स्वास्थ्य, कुपोषण,

गरीबी, भूखमरी, बिजली एवं पानी इत्यादि समस्याओं के लिए हरपाल सिंह खरी समिति का गठन किया गया।

महिला सशक्तिकरण

महिला सशक्तिकरण को वैश्विक स्तर पर प्रकाश डालें तो अर्न्तराष्ट्रीय महिला दिवस 8 मार्च, 1910 को डेनमार्ग में मनाया गया। संयुक्त राष्ट्र संघ ने अपने घोषणा पत्र में मानव के मौलिक अधिकार संरक्षण व संवर्धन का उद्देश्य स्पष्ट कर नारी व पुरुषों दोनों को एक पूर्ण इकाई बनकर अग्रिम विकास यात्रा को प्रारम्भ किया गया। मानव समाज में सम्पूर्ण विकास हेतु उपेक्षित नारी वर्ग के लिए विशेष प्रयत्नों की आवश्यकता को अनुभूति करते हुए अलग से 'मानव अधिकार घोषण पत्र' के अतिरिक्त महिला हितों की रक्षा करने के लिए 1946 में ही स्त्रियों की स्थिति का अध्ययन करने हेतु एक आयोग का गठन किया गया, जिसको 'कमीशन आन टू स्टेट्स ऑफ वीमेन का नाम दिया गया।सन् 1948 में मानवाधिकारों को विश्व में घोषणा की गई। तत्पश्चात् 1967 में भी संयुक्त राष्ट्र महासभा द्वारा महिलाओं के प्रति हो रहे भेदभाव को समाप्त करने सम्बन्धी प्रस्ताव पारित करके घोषणा की गई थी। जिसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि, विवाह या विवाह विच्छेद, शैक्षणिक या व्यवसायिक किसी भी क्षेत्र में महिला व पुरुष में भेदभाव वर्जित है। इसी क्रमबद्ध तरीके से पुनः 1970 में प्रस्ताव पारित किया गया, जिसमें मुख्यतः घोषणा की गई कि महिलाओं के उत्थान में विकास के सभी संसाधनों का उपयोग किया जाये।

महिलाओं के कल्याण के सन्दर्भ में सम्पूर्ण विश्व में नारी उत्थान व विकास के प्रति चेतना जगाने के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा की 18 दिसम्बर 1972 की बैठक में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ग घोषणा करने का निर्णय लिया गया था। अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ग के उपलक्ष्य में 1977 में मेक्सिको सिटी में महिलाओं का प्रथम विश्व सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में तीन केन्द्रिय बिन्दु निर्धारित किये गये– समता, प्रगति व शान्ति जो आगामी वर्षा में संगठन द्वारा महिलाओं के विकास के लिए किये गये प्रयास एक आधार के रूप में प्रस्तुत हो सकें। वर्ष 1976 से 1985 का समय संयुक्त राष्ट्र महिला दशक का रहा। इस दशक के दौरान महिलाओं की विकास आवश्यकताओं से हटकर ध्यान इस मान्यता पर केन्द्रित हुआ है कि विकास प्रक्रिया में महिलाओं का योगदान विकास के लिए अनिवार्य है। महिलाओं के विकास और अधिकारों की रक्षा के लिए संयुक्त राष्ट्र महासभा ने 18 दिसम्बर 1979 को महिलाओं के खिलाफ सभी प्रकार के भेदभाव समाप्त करने के विषय में प्रस्ताव पारित किया गया जो 3 सितम्बर 1981 से प्रभावी हुआ।'' 1980 के संयुक्त राष्ट्र महिला दशक के उत्तरार्द्ध में कोपेन हेगन में आयोजित द्वितीय विश्व महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया। जिसमें शिक्षा, स्वास्थ्य व रोजगार पर विशेष बल दिया गया।

सन् 1985 में नौरोबी में महिलाओं पर हुए तृतीय विश्व सम्मेलन ने इस दशक के दौरान हुई उपलब्धियों तथा अड़चनों का पुनः अवलोकन किया गया। प्रथम संयुक्त राष्ट्र महिला दशक का समापन हुआ इसमें महिलाओं को शिक्षा एवं प्रशिक्षण हेतु प्रोत्साहन देते हुए सभी राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों की भूमिका में वृद्धि कर पुरुषों के समान भागीदारी निभाने की भविष्य रणनीति तय किया गया। सन् 1986 से 1995 के मध्य महिलाओं के समर्थन को संगठन की सभी एजेन्सियों व निकायों के विकास प्रयत्नों प्राथमिकता प्रदान किया गया। महिलाओं के विकास के मुद्दे पर इस काल में शिक्षा, बच्चो की स्थिति, पर्यावरण, संरक्षण, मानवाधिकार, जनसंख्या तथा सामाजिक विकास पर संयुक्त राष्ट्र मण्डल के सम्मेलनों के परिणामों से प्रतिबिंबित हैं।महिला सशक्तिकरण को गति प्रदान करने हेतु सितम्बर 1995 में चीन की राजधानी बीजिंग में चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय महिला सम्मेलन का आयोजन किया गया। इसमें महिलाओं के मानवाधिकार पर बल दिया गया और लिंग समता प्रति के लिए सभी नीति निर्माता व योजना के सभी स्तरों पर लैंगिकता के आधार पर समानता पर बल दिया गया है।

भारतीय परिपेक्ष्य में महिला सशक्तिकरण

महिला सशक्तिरकण से तात्पर्य हमारी वृद्धि में मूल रूप से महिलाओं के लोकतांत्रिक अधिकारों एवं उनके मानवाधिकारों का प्रश्न हैं, जो आंशिक रूप से सार्वभौतिक एवं आशिंक रूप से सार्वभौमिक एवं आंशिक रूप से सांस्कृतिक निष्ठ है। यह भी सत्य है कि 1950 से 1960 के दशकों को विकास के दशकों के रूप में गौरवान्वित किया गया किन्तु 1970 में स्टर बोसेरप के अध्ययन **'वोमन्स रोल इन इकोनॉमिक डेवलपमेन्ट'** ने यह उजागर किया कि अनेक विकास परियोजनाओं का परिणाम महिलाओं की प्रस्थिति को बेहतर बनाने के बजाय उनके लिए अवसरों की वंचनाओं में हुआ है।[25] महिलाओं के विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत लाने के लिए प्रयास किये गये। यह दृष्टिकोण उदारवादी विकास प्रतिमान का ही प्रतिरूप था। जिसमें स्त्री–पुरुष समानता के वैधानिक, औपचारिक आयामों पर बल दिया गया था।

उक्त दोनों प्रक्रियाओं में महिलाओं की बुनियादी आवश्यकताओं–जीविका, स्वास्थ्य, शिक्षा, प्रशिक्षण व विमर्श प्रभावशाली रहा है। महिलाओं के विकास के प्रोत्साहित करने के लिए 1974 में भारत में स्त्रियों की प्रस्थिति पर प्रकासित रिपोर्ट 'समता की ओर पहली बार समग्र' दृष्टि से महिलाओं की स्थिति पर प्रकाश डाला गया है। राष्ट्रीय स्तर पर संवैधानिक तथा कानूनी प्रावधानों के सन्दर्भ में महिलाओं के अधिकारों की वास्तविक स्थिति पर प्रश्न उठाये गये। उसके बाद 1975 में सम्पूर्ण स्त्रियों की दशाब्दी की घोषणा से स्वतंत्र भारत में स्त्रियों की स्थिति का विभिन्न दृष्टिकोण से अध्ययन का प्रयास किया गया।[27] सन् 1975 के बाद समिति की अनुशंसाओं के अनुरूप एवं अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ग (एवं दशक के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय) एवं भारतीय महिला आन्दोलन की पुनः सक्रियता के फलस्वरूप महिला स्थिति में सुधार के अनेकानेक नीतिगत निर्णय लिए गये।

महिला सशक्तिरकण को विशेष वरीयता प्रदान करने के लिए 6वीं पंचवर्षीय योजना में महिलाओं के सन्दर्भ में पहली बार अलग से कुछ विशेष प्रावधान किये गये। 1976 में महिला के विकास के लिए राष्ट्रीय कार्यवाही योजना बना और यह सिलसिला लगातार जारी रहा। इसी रिपोर्ट के अनुसार केन्द्र सरकार द्वारा 'राष्ट्रीय सन्दर्भ योजना' (1980–2000) तैयार की गयी, जिसमें महिलाओं को राष्ट्र के विकास में मुख्यधारा में शामिल करने के लिए बहुउद्देशीय नीतियों का निर्माण किया गया। स्वरोजगार में कार्यरत महिलाओं तथा अनौपचारिक क्षेत्र में महिलाओं के लिए राष्ट्रीय आयोग की व्यापक रिपोर्ट 'श्रम शक्ति 1988' में अनौपचारिक क्षेत्र में महिलाओं कामगारों से सम्बन्धित मामलें पर विचार किया गया और स्त्रियों की स्थिति में सुधार के लिए महत्वपूर्ण सिफारिशों की गयी।

महिला सशक्तिकरण के विविध अर्थ

महिला सशक्तिकरण की विचारधारा की शुरूआत 1980 के दशक में उनके अधिकारों को लेकर हुई थी। इसका पहला उद्देश्य तत्कालीन असमान, राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक संरचना को चुनौती देना था एवं दूसरा अनिवार्य उद्देश्य आमूल–चूल परिवर्तन करना है। सन् 1990 के लगभग विकास की कुछ संस्थाओं ने इस अवधारणा को विकास को एक वैकल्पिक उपागम के रूप में अपनाया गया है।

गीता सेन और करेन ग्राउने ने सन् 1987 में अपनी 'पुस्तक विकास, संकट और **वैकल्पिक दृष्टियाँ (परिप्रेक्ष्य)** में सर्वप्रथम 'एम्पारवमेण्ट' शब्द का प्रयोग किया। इसके बाद में विकासात्मक समाजशास्त्रियों और महिलाओं के जीवन में सुधार रूचि रखने वाले विद्वान ने इसका प्रयोग लिंग सम्बन्धों में किया। सशक्तिकरण की विचारधारा को मात्र लिंग सम्बन्धों के साथ जोड़ना उचित नहीं है। यह न केवल एक लैंगिक मुद्दा है बल्कि यह एक विकासात्मक मुद्दा है, जो स्त्रियों एवं पुरुषों दोनों को समान रूप से प्रभावित करता है। परन्तु आम तौर यह हासिये पर जो समूह है। वह (विशेषकर महिलाएँ) उनसे सम्बन्धित एक मुद्दा है। महिलाओं आत्म–विश्वास, आत्म सम्मान और शक्ति की अनुभूति तथा विस्तृत सन्दर्भ में एक–दूसरे से

सम्मान प्राप्ति के अधिकार को योग्यतम मानने का भाव का मुद्दा है। सशक्तिकरण व्यक्तिगत सम्बधात्मक और सामूहिक त्रिस्तरीय मुद्दा है, इसके माध्यम से महिलाओं के शक्ति एवं अधिकार में वृद्धि होती है। सशक्तिकरण में इसकी व्याख्या कई ढंग से की गयी है शाब्दिक अर्थ के अनुसार सशक्तिकरण का अर्थ है–'किसी व्यक्ति या समूह को सत्ता या कानूनी शक्ति देना, किसी को कार्य करने के लिए शक्ति, विश्वास एवं किसी व्यक्ति या समूह को अपने कार्य करने के लिए स्वतंत्र क्षमता प्रदान करना है।

रिचार्ड कार्बर के अनुसार सशक्तिकरण का अर्थ उस स्वतंत्रता से है है जो कार्य करने के सबसे अच्छे तरीके के साथ जुड़ी हुई है। सशक्तिकरण की अवधारणा प्रायः अलग–अलग तरीकों में अलग समझ ली जाती है। इसलिए सशक्तिकरण की स्पष्ट अवधारणात्मक व्याख्या आवश्यक है। सामाजिक सन्दर्भों में शक्ति का अर्थ वह प्रक्रिया है जो शासन नियंत्रण, निदर्शन तथा प्रभाव के साथ जुड़ी हुई है। जिसका कार्य व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूप से सुरक्षा प्रदान करना और जनता का विकास करना है। रिचार्ड कार्बर सशक्तिकरण को व्यक्तियों के लिए उस प्रोत्साहन के सन्दर्भ में परिभाषित करते हैं जो समान लक्ष्यों को प्राप्त करने में सहायता प्रदान करती है।

सशक्तिकरण की प्रक्रिया उस संस्कृति का निर्माण करती है, जिसमें प्रत्येक स्तर का व्यक्ति यह अनुभव करता है कि वह अन्तरों के विपरित उस विश्वास और क्षमा को प्राप्त कर सके, जिससे महिलाओं के सामाजिक विकास में सहयोग प्रदान होगा।

सशक्तिकरण के अन्य अर्थ संक्षेप निम्न है

- सशक्तिरकण के अन्तर्गत अधिकार एवं कर्तव्यों की जानकारी करना जिसके माध्यम से सता एवं अधिकार उन व्यक्तियों के हाथों में केन्द्रित हो सके जिनको अपने कार्यों को करने लिए सत्ता, उत्तरदायित्व, स्रोत और अधिकारों की आवश्यकता है।
- उन परिस्थितियों का निर्माण करके जिसके समान्य लक्ष्यों के लिए व्यक्ति अपनी क्षमताओं और सम्भावनाओं को उच्च स्तर तक प्रयोग करें।
- वह मनोवैज्ञानिक ऊर्जा के माध्यम से लोगों को सक्रिय बना सकें।
- उत्तरदायित्वों का निर्णय लेने की सामर्थ्य में परिवर्तन जो निम्न स्तर तक प्रभावी हो सके।
- सशक्तिकरण वह प्रक्रिया है जो सही वातावरण उत्पन्न करती है और वह संरचना है जिसमें व्यक्ति श्रेष्ठता क्षमता के साथ सर्वश्रेष्ठता प्राप्त करता है।
- सशक्तिकरण यह चिन्हित करती है कि शक्ति एवं सत्ता मौजूद है और कोई भी इसके प्रभावी प्रयोग के लिए स्वतंत्र है।
- सशक्तिकरण का सबसे साधारण सर्व रूपीय अर्थ यही है कि शक्ति किया जाऐ।

समाजशास्त्रियों ने इस दृष्टिकोण में से उन सभी समूहों को सम्मिलित करने का प्रयास किया है जो सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक दृष्टि से कमजोर कहें जाते हैं। दूसरे शब्दों में इन समूहों में इन समूहों का समाज में अधीनत्य का स्तर है और इस अधीनता से मुक्ति समाज के विकास के लिए आवश्यक है। समाजशास्त्रियों के अनुसार, ''सशक्तिकरण को वह शक्ति कहा जाता है जो इन समूहों को अधीनता के विरूद्ध आवाज उठाने और उनके विरूद्ध संघर्ष करने का परिस्थितियों को प्रोत्साहित होती है।

सशक्तिकरण का अर्थ वस्तुतः उन परिस्थितियों सभ्भावनाओं और अवस्थाओं को शक्ति प्रदान करना है, जिससे किसी समूह को ऐसा बल मिल सके, जिससे मौका पड़ने पर न केवल आवाज उठाये बल्कि उसके विरूद्ध संघर्ष तथा गैर बराबरी के स्थान की मान्यताओं को स्थापित कर सके। सशक्तिकरण के महत्वपूर्ण दो पक्ष है पहला पक्ष अधिक अधिकार के व्यक्तियों से अधिकारों को कम करना या वापस लेना है और दूसरा पक्ष पहले पक्ष के विपरीत एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करता है जिसमें बिना कुछ निर्बल लोगों

को एक ऐसी स्थिति प्रदान करना है जो उन्हें समता की प्रक्रिया के साथ जोड़ सके। सशक्तिकरण की इस अवधारणा में स्वतन्त्रता तथा गरिमा दोनों का प्रश्न निहित है। सशक्तिकरण के पश्चात् महिलाओं के सन्दर्भ में सशक्तिकरण को गहराई से समझा जाना उचित होगा।

महिलाओं के सन्दर्भ में सशक्तिकरण के तात्पर्य भौतिक सम्पदा, बौद्धिक साधनों व विचारधारा पर स्त्रियों का भी नियन्त्रण होने से है। भौतिक साधनों में भूमि, जंगल, जल, शारीरिक श्रम, सम्पत्ति व सम्पत्ति के स्रोतों पर नियन्त्रण को सम्मिलित किया जा सकता है। जबकि बौद्धिक स्रोतों में ज्ञान, सूचना तथा विचारों पर नियन्त्रण के अर्न्तगत विशिष्ट प्रकार के विश्वास, मूल्य अभिवृत्तियों तथा व्यवहार, हिस्सेदारी, निर्णय लेने में अधिक स्वायत्तता, अपने अवसरों को अधिक कुशलता से निभाने की क्षमता और अप्रसांगिक प्रथाओं, सामाजिक नियमों और व्यवहारों के चंगुल से निकलने में सहायता करना है।

आन्द्रे बेतई ने सशक्तिकरण पर दृष्टिकोण को व्यक्त करते हुए स्पष्ट किया है कि 'सशक्तिकरण सामाजिक रूपान्तरण से सम्बन्धित है, जिसमें आमूल–चूल परिवर्तन की व्याख्या सामान्य आम लोगों के सन्दर्भ में की गयी है।'' यह विचार राजनीतिज्ञों विशेषज्ञों एवं सामाजिक, सांस्कृतिक तौर पर विकसित व्यक्तियों की अपेक्षा आम लोगों के पुनरुत्थान के विषय में है, जिसमें शक्ति की अवधारणा निहित होता है।

अतः इस प्रकार स्पष्ट है कि महिला सशक्तिकरण का अभिप्राय महिलाओं का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं वैयक्तिक इत्यादि क्षेत्रों का प्रभावी तरीके की हस्तक्षेप की क्षमता से है। इसके लिए संरचनात्मक स्तर पर संसाधनों तक पहुँच आवश्यक है तथा वैयक्तिक स्तर पर चेतना आत्मविश्वास एवं आत्मावलम्बन है।[34]

सन्दर्भ ग्रंथ सूची–

1. कुमार राजीव (2010), 'ग्रामीण विकास को चाहिए नया दृष्टिकोण कुरूक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली।
2. कुरूक्षेत्र, ग्रामीण विकास मंत्रालय, अक्टूबर 2010,
3. एस0एस0 जावेद अख्तर, (2010) भारत में महिला सशक्तिकरण के विविध आयाम दीप एण्ड पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली,
4. सिंह, कटार, (2011), ग्रामीण विकास नीतियाँ एवं प्रबन्ध, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली।
5. सिंह, बैजनाथ (2009), 'सामुदायिक ग्रामीण विकास, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नई दिल्ली,
6. बलवन्त, राय, मेहता (1998), 'समिति रिपोर्ट, प्रकाशक भारत सरकार, पंचायती राज या प्रजातान्त्रिक विकेन्द्रीकरण।
7. जोशी, आर0पी0 एवं मंगलानी रूपा (2003), भारत में पंचायती राज, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ आकादमी, जयपुर,
8. अहमद, मेराज, (2007), 'विकास का समाजशास्त्र', विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली,
9. दत्त, रूद्र एवं सुन्दरम्, के0 पी0 एम0 (1997), 'भारतीय अर्थव्यवस्था एस0 चन्द्र एवं कम्पनी, नई दिल्ली,
10. अहमद, मेराज (2007), 'विकास का समाजशास्त्र', विश्व प्रकाशन, नई दिल्ली,
11. तिवारी, जयकान्त (2003), भारत का समाजशास्त्र' उत्तर प्रदेश, हिन्दी संस्थान, लखनऊ।
12. भारत (2015), 'आयोजन' प्रकाशन विभाग', सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली,
13. तिवारी, जयकान्त, (2003), 'भारत का समाजशास्त्र' उत्तर–प्रदेश, हिन्दी संस्थान, लखनऊ,
14. भारत, (2008), 'आयोजन, प्रकाशन विभाग', सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिल्ली,
15. अन्सारी, एम0ए0 (2007), 'महिला एवं मनावधिकार', ज्योति प्रकाशन, जयपुर,

काशी की धार्मिक परम्पराओं पर आधुनिकीकरण का प्रभावः एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

निर्मालिका सिंह
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

कुछे ऐसे अछूते नगर भी संसार मे स्थित है जहॉ पर काल की विकरालता का कोई प्रभाव नही हैं ऐसा ही एक नगर है काशी जो भोग और मोक्ष दोनो का प्रतीक है। भोग–मोक्ष समभाव मे काशी का सामाजिक व सांस्कृतिक स्वरूप पूर्ण रूप से झलकता है। काशी तीन संस्कृतियों एवं दो धर्मो की नगरी है। इस नगरी को अपने मे विभिन्न आकारों और विचारधाराओं को समावेश करने की महान शक्ति प्राप्त है। इसे लघु ब्राह्मंड की संज्ञा भी दी जा सकती है। भगवान शिव भी काशी मे अन्नपूर्णा से शिक्षा ग्रहण करते है।

एम0 ए0 शेरिंग जो कि लंन्दन मिशनरी सोसायटी के सदस्य व एक विद्वान थे, 19 वीं सदी के मध्य मे कई वर्षो तक यहॉ रहे और बनारस शहर को उन्होंने ईसाई मिशनरी की आलोचनात्मक दृष्टि से देखा व लिखा कि–

इस शहर का सबसे ह्रदयस्पर्शी गुण यह है, जो कि अन्य प्राचीन शहरो जैसे बीजिंग, जेरूशलम, मक्का, एथेन्स और रोम आदि से अलग है, वह है इसका जीवन के सभी पहलुओं के प्रति सम्पूर्णतावादी दृष्टिकोण तथा इसकी निरन्तरता। मानव जीवन की विभिन्न अवस्थाओं के लिए निर्धारित लक्ष्य– धर्म अर्थ, काम व मोक्ष प्राप्त करने की जो विधि यह शहर प्रदान करता है, वह मानव सभ्यता के अस्तित्व मे आने से लेकर आज तक इस शहर में विद्यमान है।

प्रस्तुत शोध लेख का उद्देश्य इस अद्वितीय प्राचीन शहर में आधुनिकीकरण के कारण इसकी जीवन शैली, धार्मिक परम्पराओं ,प्राचीन रीतिरिवाज, सामाजिक धार्मिक, आर्थिक, सांस्कृतिक संस्थाओं मे आने वाले परिवर्तन का अध्ययन करना है।)

'काशी' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत मूल के 'काश' शब्द से हुई है, जिसका शाब्दिक अर्थ है, ''जो चमकता है अथवा जो देदीप्यमान हैं।'' पुराणों में आनंद–कानन, अविमुक्त, शंकरपुरी, महाश्मशान, रूद्रावास, मोक्ष–प्रकाशिक वाराणसी, शिवपुरी आनंदरूपा शिवराजधानी, श्रीनगरी, गौरीमुख, तपःस्थली महापुरी, अपूर्ण–भावाभावभूमि तथा धर्मक्षेत्र जैसे विविध नामों से काशी जानी जाती है।[1]

इसके संदर्भ मे वामन–पुराण कहता है– '' न तादृशं हि गगने, न भूम्यां न रसातले'' अर्थात् इसके समान दूसरा कुछ भी न तो आकाश में है, न धरती पर, न पाताल में 1 मत्स्यपुराण (पृष्ठ 982) में शिवजी कहते है–

''अविमुक्तंसमं क्षेत्रं न भूतं न भविष्यति''_ अर्थात् अविमुक्त काशी जैसा दूसरा पुण्यक्षेत्र न कभी हुआ है , न कभी होगा। संसार में न जाने कितनी संस्कृतियॉ विकसित हुई और विस्मृति के गर्त मे समा गई, परन्तु काशी की संस्कृति ऐसी है जो सदा फूलती–फलती रहती है। रिचर्ड लेनोय ने लिखा है – '' बनारस मात्र एक भौगोलिक इकाई नहीं है, वह एक सांस्कृतिक इकाई भी है, इतिहास का अनवरत रूप से चलता आ रहा चमत्कार है। वह मानवता की अवचेतना में गहराई से उतरता जा रहा है। वह एक ऐसा आदर्श है, जो लाखो के सपनों मे झिलमिलाता रहता हैं।'' इसलिए कहा जाता है '' वह एक स्थान नहीं अपितु एक जीता–जागता अनुभव है।''[2]

मूलतः काशी का संपूर्ण क्षेत्र एक पवित्र मंडल हैं। मंडल का अर्थ है धरती पर बना वह पवित्र वृत्ताकार स्थान, जो समस्त विश्व का उसके तारापुंजों का, देवो और उनके आंतरिक संबंधों का प्रतिनिधित्व करता है। काशी ही इस धरा का केन्द्र बिंदु है और इसकी दीप्ति परब्रम्हा की, शिव की दीप्ति है।

अतः काशी दीप्त और पवित्र क्षेत्र हैं। दर्शनशास्त्र में आदि शंकराचार्य ने एक और क्रान्तिकारी सिद्धान्त का प्रतिपादन किया है। उन्होने यह प्रमाणित किया कि ब्रम्हांण्ड (समष्टि) मे जो कुछ भी है, वह पिण्डाड (त्याष्टि) में भी है। इसलिए ब्रम्ह, शिव या काशी का तेज है, वह आत्मज्ञान का ही तेज है। उन्होंने कहा था कि कोई भी अपनी ही दीप्त आत्मा मे काशी को पा सकता है। काशी का सबसे संक्षित व यथार्थ स्पष्टीकरण उसकी दीप्ति और उसके अर्थ की अनुभूति **आदिशंकराचार्य जी** के इस **'काशी– पंचक्म में** मिलती हैं–

मनोनिवृत्ति : परमोपशान्तिः सा तीर्थवर्या मणिकार्णिका च।
ज्ञानप्रवाहा विमलादिगंगा सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा।।
यस्यामिदं कल्पितमिन्द्रजालं चराचरं भाति मनोविलासम्।
सच्चित्सुखैका परमात्मरूपा सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा।।
कोशेषु पंचस्वाधिराजमाना बुद्धिर्भवानी प्रतिदेहगेहम्।
साक्षी शिवः सर्वगतोऽन्तरात्मा सा काशिकाऽहं निजबोधरूपा।।
काश्यां हि काशते काशी काशी सर्वप्रकाशिका।
सा काशी विदिता येन तेन प्राप्ता हि काशिका।।
काशी क्षेत्रं शरीर त्रिभुवनजननी व्यापिनी ज्ञानगंगा।
भक्तिः श्रद्धा गयेयं निजगुरूचरणध्यानयोगः प्रयागः।
विश्वेशोऽयं तुरीयः सकल जनमनः साक्षिभूतोऽन्तरात्मा
देहे सर्व मदीये यदि वसति पुनःतीर्थमन्यत् किमास्ति।।

(मन को विषयों से परावृत्त करना ही परमशांति है, वही अति पवित्र तीर्थ मणिकार्णिका हैं। ज्ञान का प्रवाह ही शुद्ध पवित्र गंगा है, में वही आत्मज्ञानरूपी काशी हूँ।।

जिस नित्य सत्य चैतन्य परमात्मरूप में कल्पना विलास का यह चराचर जगत् जादू जैसा लगता है उस आत्मज्ञानरूप काशी हूँ मै।।

हर शरीर का पॉच आवरणों मे विराजमान प्रज्ञा ही भवानी है, सबकी अंतरात्मा साक्षी रूप मे बैठा शिव है, मैं वही आत्मज्ञानरूप काशी हूँ।।

(आत्मज्ञान के) प्रकाश से काशी जगमगाती है, काशी सब वस्तुओं को आलोकित करती हैं। जो इस सत्य को जान गया वह काशी में एकरूप हो जाता है।।

शरीर है पवित्र काशी, त्रिलोक में बहने वाली गंगा आत्मज्ञान है। भक्ति और श्रद्धा है गया, सदगुरू चरणों में ध्यान है प्रयाग। तुरीयावस्था मे साक्षी भाव में मन मे रहता है विश्वेश्वर । जब सब कुछ बसता है तेरे मन में और कौन सा तीर्थ उससे पावनतर है।[3]) काशी के तीन रूप है– कारण, सूक्ष्म और स्थूल। इन तीनों रूपो का वर्णन हम तीन नामों से कर सकते हैं। कारण रूप में काशी को शिव, परमात्मा व प्रकाशमान ज्योति कहते है। सूक्ष्म रूप में शिव चैतन्य, व ज्योति स्तंभ कहते हैं तथा स्थूल रूप में शिव, काशी व ज्योतिर्लिंग कहते हैं। इन तीनो रूपों का विवरण ऐसा भी हो सकता है–

कारण	सूक्ष्म	स्थूल	अर्थ
शिव	शिव	शिव	सत्
परमात्मा	चित्	काशी (ज्ञान)	चित्

ज्योति(प्रकाश) ज्योति–स्तंभ ज्योतिर्लिंग आनंद

इन तीनो वर्गो में शिव का निराकार स्वरूप ही शाश्वत् और सत्य है और वह तीनो वर्गो में प्रथम स्थान पर विद्यमान हैं। द्वितीय स्थान के परमात्मा को चैतन्य (सूक्ष्म रूप) और काशी या ज्ञान (स्थूल रूप) कहते है। तृतीय स्थान की ज्योति को ज्योति स्तंभ (सूक्ष्म रूप) और ज्योतिर्लिंग (स्थूल रूप) कहते हैं।

त्रिशूल के तीन फाल (नोक) के समान इन तीनों रूपों – कारण सूक्ष्म, स्थूल का त्रिदल वर्ग (तीन वस्तुओं का समूह) काशी की पवित्रता की ओर संकेत करता हैं। इसके साथ–साथ काशी के अन्यान्य रूप भी उभरते है जैसे–शिवजी, मुक्तिक्षेत्र काशी एवं गंगा मॉ की त्रयी, वरूणा, काशी और असी नदी की त्रयी, कर्म, भक्ति तथा ज्ञान की त्रयी, इड़ा (इच्छा), पिंग्ला (क्रिया) तथा सुषुम्ना (ब्रम्हाज्ञान) की त्रयी, उत्तर–वाहिनी (उत्तर की ओर बहने वाली) गंगा, शिवजी के त्रिशूल तथा अन्नपूर्णा के भंडार की त्रयी, मंदिरों, घाटो तथा मठों की त्रयी, साधु संतो तथा सिद्धों की त्रयी, विष्णु (बिंदुमाधव– बल्लभाचार्य),शिव (विश्वनाथ– आदिशंकराचार्य) और राम (रामलीला–तुलसीदास) की त्रयी, स्थावर (स्थल और जल), जंगम (साधु–संत–सिद्धपुरूष) और मानस तीर्थ की त्रयी, ऐसी त्रयियां काशी से संबद्ध हैं। इन समस्त त्रयियों का केन्द्र बिंदु काशी है। तीन–तीन वस्तुओं के उन समूहों (त्रायियों) के अतिरिक्त, संपूर्ण धरती पर काशी ही ऐसा एकमात्र स्थान माना गया है जहां मानव को मोक्ष सहित चारो पुरूषार्थ। सिद्ध होते है।[4] भुक्ति–मुक्ति के अन्यतम साधनों तथा भारतीय संस्कृति, साधना एवं साहित्य की स्थली के रूप में परम पावनी काशी नगरी का स्थान मूर्धन्य रहा है। विभिन्न युगों में हमे इसकी गौरव–महिमा के दर्शन भारतीय वाड्.मय के माध्यम से होते है।[5]

कृत्य कल्पतरू के तीर्थ **विवेचन खंड** का शुभारम्भ मत्स्त्यपुराण के उद्धरणों से किया गया है, जिसमें शिवजी ने पार्वती से यह कहा है–

''वाराणसी मेरी प्रिय नगरी हैं। यहॉ न केवल पापियों को बल्कि पशुओं को भी मोक्ष मिलता है। यहाँ सिद्ध तथा तरह–तरह के सन्यासी और योगी रहते है। चूंकि मै इस नगरी को छोड़कर कही नही जाता, अतः यह अविमुक्त कहलाती है।[6]

काशी अद्भुत नगरी है योगवती और भोगवती दोनों साथ साथ जितनी खुली उतनी ही तोपी–ढकी। जितनी स्पष्ट, उतनी ही रहस्यों, से भरी जिनकी मौन उतनी ही मुखर। जितनी बोरियत भरी उतनी ही दिलचस्प। अपनी प्रत्येक उपस्थिति में आनंदमयी। काशी पहली नजर का आश्चर्य है। बकौल केदारनाथ सिंह '' कभी आरती के आलोक मे आचानक देखो, अद्भुत है इसकी बनावट, यह आधा जल मे है, आधा मंत्र मे, आधा फूल मे आधा शव में है और शताब्दियों से खड़ा इसी तरह गंगा जल में है। '' काशी, मोक्ष, मंदिर, गंगाघाट और माधुर्य का अखिल भारतीय शहर में है।'' काशी, मोक्ष , मंदिर, गंगाघाट और माधुर्य का अखिल भारतीय शहर हैं। यहॉ के गंगा तटो की हर सुबह और संध्या सत्य एवम् सद्भाव् से अभिभूत होती है। यह गंगा, ज्ञान और गलियों का शहर भी है जहॉ हर समय संस्कृति और साधना का संगम होता है। काशी चारो पुरूषार्थ – धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की पुनीत नगरी है जहॉ प्राचीन काल से आज तक साधु संत एवं सन्यासियों की सतत् परम्परा रही है।[7]

गोर्डन सिन्क्वलेयर– ने लिखा है कि, ''मौज मस्ती, हॅसी–ठहाके। लोग हॅसते हैं। उसमें ऐसी क्या नई बात है? मै भी हॅसता ही था। पर इस दिव्य संवेदना से स्पंदित हिन्दू नगर मे कोई हॅसता नही, बस पागल की तरह जोरदार ठहाका मारता हैं। दिल के अंतस्तल से निकलकर, पहाड़ी झरने की तरह घहराती खुली उन्मुक्त हॅसी। यहॉ दिखाई देती है, सिर्फ मौत, दाँत किटकिटाते बंदर, आपकी ड्योढ़ी मे खड़ी गायें, गंदा पानी पीते हुए लोग या हाथी के मुॅह वाले पत्थर के बालक के सामने हाथ जोड़कर खड़े पागल लोग।''[8]

उर्दू के महान शायर गालिब, बनारस के प्रति अपने आकर्षण को बयान करते हुए इस हद तक गये है कि उन्होनें कहा – मैं अपने आप को तसल्ली देता हूँ कि जब मैं हिन्दुओं के पाक नगर मे आया हूँ तो मुझे पाक मक्का जाने की क्या जरूरत। अगर धार्मिक तिरस्कार और टीका– टिप्पणी का डर नही होता तो मै अपना धर्म छोड़कर पवित्र धागा पहन लेता, माथे पर तिलक लगाता और माला फेरने लगता। इस तरह खुबसूरत नगर बनारस में गंगा किनारे अपनी जिंदगी गुजारना मुझे बेहद अच्छा लगता।[9]

बनारस की धार्मिक परम्पराओं पर आधुनिकरण का प्रभाव–

विलियम होजेस ने टैवल्स इन इंडिया (1783 ई0) नामक पुस्तक में लिखा है कि– '' बनारस वैश्विक मान्यताओं मे अत्यधिक प्राचीन हिन्दू नगरों में से एक है जिसकी पुरानी परम्पराओं, रीतिरिवाजों तथा आचार विचारो पर विदेशियों का रतीभर भी प्रभाव नही पड़ा है। यह संभवतः विश्व का सबसे पुराना शहर है जिसकी संस्कृति एवं रहन–सहन का तरीका तीन हजार साल पुराना है फिर भी उनमें उच्चतम सभ्य समाज का सुसंस्कृत शिष्टाचार दिखाई दे रहा है।[10]

बनारस को विविध धर्मो व विविध परम्पराओं का एक वृहद् संग्रहालय कहा जाय, तो अनुचित न होगा। भगवान बुद्ध ने तो इसी स्थान से धर्मचक्र प्रवर्त्तन किया। जैनों के प्रसिद्ध तीर्थंकर पार्श्वनाथ की जन्मभूमि होने के कारण बनारस जैन धर्म का भी प्रसिद्ध तीर्थस्थल है। शैवधर्म से तो बनारस का बड़ा प्राचीन सम्बध है और भागवतों ने भी गुप्तयुग में बनारस मे अपना अड्डा जमाया। बनारस प्राचीन काल से ही नाना मतावलंम्बी श्रमणों और ब्राम्हाणों का साधनास्थल था। बनारस में प्राचीन काल से ही मातृपूजा, यक्षपूजा और नागपूजा, पिचाशपूजा प्रचलित थी। बनारस के 6वीं सदी से प्रारम्भ होकर 12 वीं सदी में अर्थात् गाहड़वाल युग तक काशी में 12 स्वयंभूलिगो का स्थानांतरण हुआ जिसमें विश्वेश्वर आदि काशी विश्वनाथ प्रमुख है।[11]

परन्तु वर्तमान समय में काशी की धार्मिक परम्पराओं में आधुनिकरण के कारण त्तीवतम परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है। विश्व में जहॉ कही भी आधुनिकता का प्रवेश हुआ है वहॉ आधुनिकता और परम्पराओं मे द्वन्द्व हुआ है। भारतीय समाज में अन्तर्विष्ट नम्यता के गुणों के परिणामस्वरूप इस समाज ने आधुनिकता के कुछ पक्षों को अंगीकार कर लिया है परन्तु अपनी भारतीयता, मूल परम्पराओं के स्वरूप को बचाये रखते हुए।[12]

आधुनिकीरण का तात्पर्य केवल अधिक विकसित देशों के वियुक्त कतिपय विशेषताओं, तत्वों अथवा संलक्षणों का पृष्ठीय अर्जन अथवा अंगीकरण नहीं है वरन् उनका एक अधिक तर्क संगत क्रम मे चयन करके मौलिक सांस्कृतिक प्रतिमान के साथ सुसंगठित एकीकरण है।[13]

हम काशी के नगरीय चरित्र को समझने के लिए 4 प्रमुख उपदानों को समक्ष रख रहे है– (1) विभिन्न संस्कृतियों का संगम (2) दरिद्रता, आर्थिक विषमता एवं सामाजिक विघटन का नगर (3) परम्परागत ऐश्वर्य का नगर और (4) सृजनशीलता तथा कुण्ठा का नगर। वस्तुतः किसी भी नगर को समझने के लिए इन चारो आयामों का अध्ययन आवश्यक है। अब तक नगरों के चरित्र बताने के लिए समाज–' वैज्ञानिक ''आधुनिक'' ''परम्परागत'', '' राजनैतिक रूप से चंचल'' '' सर्वदेशीय '' और देशज'' जैसे टकसाली पदों को उपयोग करते रहे है, किन्तु काशी जैसे विशुद्ध भारतीय संस्कृति के नगर को अधिक गहराई से समझने के लिए ये शब्द पर्याप्त नहीं है। काशी का अपना एक विशेष जीवन है। इसकी चाश और स्वाद की अपनी विशेषता हैं।

परन्तु काशी की जीवन शैली में आधुनिकीकरण के कारण विभिन्न समस्याएँ भी उत्पन्न हो रही हैं। युवा आक्रोश का प्रदर्शन, राजनैतिक शक्तियों की रस्साकशी, काशी के तीनों विश्वविद्यालयों मे हो रही है। शायद काशी की परम्परागत संस्कृति का वर्णन साहित्यिक निबन्धों मे इतना उदात्त है कि साधारणतः लोग

इस तथ्य को जानते–मानते ही नही कि काशी घोर दरिद्रता, आर्थिक विषमता एवं सामाजिक विघटन का भी नगर है। यहॉ गरीबों, अनपढ़ों, शोषित लोगो की संख्या बढ़ती जा रही है। क्या यह सच नही है कि धार्मिकता के प्रदर्शन के लिए अथवा मोक्ष के लालच मे जब कोई धनी मानी तीर्थयात्री शहर के ह्रदय स्थल मे दशाश्वमेघ घाट पर चने के चार दाने फेकता है तो सैकड़ों नरकंकाल उस पर टूट पड़ते है , क्या इस कोटि की विषमता हमारी संस्कृति का अपरिहार्य अंग है? इस वीभत्स रूप से मुड़कर जब हम यहॉ की गलियों मे जाते है तो लगता है कि एक बड़े गॉव मे पहुॅच गये है और वह गॉव है पशुपालकों का।[14]

अपहरण, हत्या बलात्कार, वेश्यावृत्ति जैसे अपराध भी इसी समृद्ध सांस्कृतिक परम्परावाले काशी मे ही दिखाई देते है। किसी सुंदर बनारसी साड़ी की चुन्नटों मै जैसे पैबंद लगे हिस्से चालाकी से छिपायें जाते है, वैसे ही इन अरूचिकर बातो को छिपाया जाता है। तथ्य संकलन के दौरान एक वृद्ध अपने शिकायती लहजे मे कहते है कि–''अभी–अभी बने इन सैकड़ों बस्तियों को देखिये तो सही यह रईस लोगो को अब पक्के महालों की जगह बड़े इलाको मे योजनाबद्ध तरीकों से बनी पर, बुरी देख–रेख वाली नौ–मंजिला इमारते अच्छी लगती है, जिन सुंदर घाटों पर पहले मंदिर और धर्मशाखाएं हुआ करती थी, वहॉ अब विदेशियों के लिए टूरिस्ट लॉजेस बन गये है। जहॉ देवी– देवताओं के रहने के जगह को गो–मांस, शराब, हुक्का, गांजा, तथा रात की पार्टियों से भ्रष्ट किया जाताहै। झील, कुण्ड, कूप, जलाशय, आदि नगरीकरण की भेंट चढ़ गये है। आस–पास के सारे जंगल गायब हो गये हैं तथा उनकी जगह कंक्रीट के जंगल उग आये हैं, ईश्वर मे सच्ची आस्था रखने वाले कर्मकाण्डी पण्डितों की जगह व्यापारी पण्डो ने ले लिया है तथा मौत को बुलावा देते तेज गति वाले प्रदूषण और घुटन फैलाने वाले, आधुनिक तंत्रज्ञान की देन मशीनी वाहनों का, तेजी से गिरते नैतिक मूल्यों और सस्ते होने जीवन का कोई पर्याय नहीं।

हर सदी ही नहीं, हर पीढ़ी मे भी संस्कार बदल रहे है। यह है एक पंडित की दार्शनिक टिप्पणी। जी! पुराने संस्कारों को छोंड़ा जा रहा है और नये शौक प्रतिदिन बढ़ते जा रहे है। मुंडन और यज्ञोपवीत समारोहो मे अब किसकी दिलचस्पी है, अब उसकी जगह बर्थ डेज है, मैरेज ऐनिव्हर्सरीज है। धार्मिक जीवन मे भी श्रद्धा–भक्ति व आस्था की भावनाएॅ संक्रमणकाल से गुजर रही है। धार्मिक विश्वासों को प्रश्नों के कटघरे मे खड़ा करकें उन्हें कसौटी पर कसा जा रहा है। गंगा को पहले माँ कहते थे, अब वह केवल एक नदी बनकर रह गई है। पहले गंगा स्नान से समस्त पाप धुलते थे, पर अब प्रदूषण और उपसर्ग के डर से बहुत से लोग गंगा–स्नान से कतराने लगे है। मंदिर–दर्शन, व्रत, दान पुण्य, कर्मकाण्ड सिर्फ बड़े –बूढ़ों या पीड़ित कमजोर लोगो के लिए है। त्योहारो व मेलों का वह पुराना अर्थ एवं प्रयोजन कही खो गया है।[15]

प्रस्तुत लेख के माध्यम से काशी की मूलतः धार्मिक परम्पराओं पर उनके जीवन शैली पर ,धार्मिक विश्वासों, पूजा पद्धतियों, कर्मकाण्डों, दृष्टिकोणो, निजी सम्बन्धों, मोक्षप्राप्ति, गंगास्नान दान–पुण्य इत्यादि क्रियाकलापों पर आधुनिक जीवन शैली के कारण होने वाले परिवर्तन का अध्ययन करना है।

साहित्य सर्वेक्षण–

किसी भी क्षेत्र मे विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह जरूरी होता है कि उस ज्ञान से सम्बन्धित उपलब्ध साहित्य का विश्लेषणात्मक और गहन अध्ययन किया जाये, जिससे महत्वपूर्ण तथ्य व निष्कर्ष सुगमता से प्राप्त हो सके। कुछ प्रमुख अध्ययनों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है–

जेम्स प्रिंसेप (1833 रिप्रिन्ट 1996)[16] ने अपने अध्ययन में काशी के इतिहास एवं उसकी 19 वीं सदी में व्याप्त परिस्थितिओं को प्रस्तुत किया हैं। प्रिंसेप ने काशी का सन् 1822 ई0 में नक्शा बनाया, जिसमें काशी के गंगा घाटों को प्रस्तुत किया है।

एम0 ए0 शैरिंग (1868 रिप्रिंट 2016)[17] ने अपने अध्ययन में पाया कि काशी हिन्दू धर्म का सर्वाधिक मान्य और शीर्षस्थ तीर्थ हैं। शैरिंग ने अपने अध्ययन में पंचगंगाघाट, मानमंदिर घाट, दशाश्वमेघ घाट, शिवाला घाट आदि का वर्णन करते हुए इन घाटों की ऐतिहासिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए, इन घाटों की तत्कालीन स्थिति पर प्रकाश डाला है।

ई0वी0हैवेल (1905 रिप्रिंट 1990)[18] ने अपने अध्ययन में काशी की वैदिक उपनिषदिक स्थिति को प्रस्तुत करते हुए काशी के गंगा घाटों पर होने वाली आराधनाओं को प्रस्तुत किया है।

कुबेरनाथ सुकुल (1977)[19] ने अपने अध्ययन ' वाराणसी वैभव ' में काशी के गंगा घाटों के इतिहास के विषय में लिखा है कि, गाहड़वालो के तामपत्रों में काशी के गंगा घाटों का उल्लेख मिलता है जैसे आदिकेशव घट्ट, वेदेश्वर घट्ट, त्रिलोचन घट्ट, स्वप्नेश्वर घट्ट। काशी के धार्मिक वैभवपूर्ण सम्पदा को इस अध्ययन ग्रन्थ में विस्तृत रूप से प्रस्तुत किया गया है।

मुकुन्द लाल सर्राफ (1980)[20] ने अपने अध्ययन में काशी के घाटों की स्थिति को प्रस्तुत किया हैं। उनका मानना है कि काशी के घाटों के अभाव मे काशी के बह जाने का खतरा हैं। सोलहवीं सदी के अन्त में अकबर के राज्य काल मे ''राल्फ– फिंच'' नामक एक अंग्रेज यात्री बनारस आया। गंगा के घाटों का निर्माण कार्य सन् 1832 तक करीब–करीब पूरा हो चुका था।

डाइना एलएक (1982)[21] ने अपने अध्ययन में पाया कि बनारस एक शानदार शहर है। एक दृष्टि से बनारस हिन्दू परम्परा का द्योतक है। इसका धार्मिक महत्व विशेष है और शैक्षणिक परम्परा का यह पोषक है। बनारस को वे 'प्रकाश का शहर (सिटी ऑफ लाइट)' से सम्बोधित करती हैं। बनारस शिव का शहर हैं। इस अध्ययन ग्रन्थ में वाराणसी के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य के साथ ही घाटों के सामाजिक,धार्मिक, सांस्कृतिक और आर्थिक पक्ष पर प्रकाश डाला गया हैं।

बलदेव उपाध्याय (1983)[22] ने काशी के प्राचीन इतिहास एवं यहॉ की पाण्डित्य परम्परा को प्रस्तुत किया है। काशी की प्राचीनता का इतिहास वैदिक साहित्य से उपलब्ध होता है। अथर्ववेद में काशीवासियों के लिए 'काशयः' शब्द का प्रयोग मिलता है। अत्यन्त प्राचीनकाल से ही प्रख्यात्, ऋषि मनीषी और आचार्य अपनी विद्वता को प्रकाशित और प्रमाणित करने के लिए काशी आया करते थे। इसलिए इसे विद्या, धर्म, दर्शन राजनीति, शिक्षा एवं कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व योगदान दिया।

डॉ मोतीचन्द्र (1962)[23] ने अपने अध्ययन मे काशी के इतिहास को प्रस्तुत करते हुए घाटों के इतिहास पर प्रकाश डाला हैं। उन्होंने अपने अध्ययन में पाया कि अठारहवी सदी में मराठों ने काशी के घाट बनवाये । धर्म शिक्षा और व्यापार से वाराणसी का विशेष सम्बन्ध होने के कारण काशी नगरी का इतिहास केवल राजनीतिक इतिहास न रहकर एक ऐसी संस्कृति का इतिहास बन गया, जिसमें भारतीयता का पूरा दर्शन होता है। काशी ज्ञान की पुरी हैं और गंगा ब्रम्हादेवी है, ये काशी के अध्यात्मसूत्र है। इन्ही की नित्य नई–2 व्याख्या काशी के जीवन की सार्थकता है।

कृष्णमूर्ति गुप्ता एवं भगवती प्रसाद नौटियाल (1991)[24] ने अपने सम्पादित ग्रन्थ में गंगा की महत्ता को स्पष्ट करते हुए बताया है कि हमारी सभ्यता को नया रूप देने मे इसकी महत्वपूर्ण भूमिका रही हैं।

सुरेन्द्र मोहन खरे (1992–93)[25] के अनुसार काशी में पंजाब, हरियाणा, समस्त पर्वतीय प्रदेश, जम्मू–कश्मीर, गुजरात, उड़ीसा आदि प्रदेशों से लोग काशीवास के लिए आते हैं इस काल में श्रद्धालु सनातन धर्मियों द्वारा इसके प्रति जिस उत्कट प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है, उसमें बाबा श्री विश्वनाथ की नगरी, मोछदायिनी काशी, शिव के त्रिशूल पर बसी, तीनों लोको से न्यारी काशी आदि उक्तियॉ बहुचर्चित हुई।

रामकृष्ण (1994)[26] का अध्ययन बनारस के विभिन्न नामों का उल्लेख करना है यथा– काशी, बनारस, वाराणसी, आनन्दवन, अविमुक्त क्षेत्र और महाश्मशान। वरूणा और अस्सी के बीच के क्षेत्र को वाराणसी कहा

जाता है। भगवान शंकर की क्रीडा–स्थली होने के कारण इसे 'आनन्दवन अथवा आनन्दकानन कहा जाता है।

डॉ0 हरिशंकर (1996)[27] ने अपने अध्ययन में काशी के घाटों का उल्लेख किया है अपने अध्ययन में उन्होनें काशी के घाटों की सांस्कृतिक महत्ता तथा हिन्दू धर्म के 16 संस्कारों के घाटों पर संपादन, घाटों पर मंदिरों का स्वरूप, विभिन्न पर्वों पर स्नान, दान, पुण्य, पंचतीर्थो की यात्रा, विभिन्न त्योंहारों एवं घाटों पर आयोजित होने वाले विभिन्न उत्सव आदि के बार में वर्णन किया हैं।

भानु शंकर मेहता (1999)[28] ने अपने अध्ययन ग्रन्थ में काशी की सांस्कृतिक महत्ता को प्रस्तुत किया हैं। काशी वह प्राचीनतम नगरी है जहॉ कला–कौशल, पाण्डित्य एवं धार्मिक अनुष्ठान की सांस्कृतिक धारा अविच्छिन्न रूप से प्रवाहित होती रही है। बनारस केवल हिन्दू ही नही अन्य धर्मो की भी संस्कृति को अपने मे समेटे हुए है एवं उनके पर्यटन की प्रमुख स्थली है।

वैद्यनाथ सरस्वती (2000)[29] ने अपने अध्ययन ग्रन्थ मे काशी की आध्यात्मिक, धार्मिक सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति को स्पष्ट किया है। सम्पूर्ण विश्व मे काशी एक अपूर्व नगरी है। साधारणतः लोग इसे हिन्दू धर्म का लघु ब्रमाण्ड, भारतीय संस्कृति का आम्नाय नगर, विश्व का प्राचीनतम जीवित नगर, 'शाश्वत–नगर, 'धार्मिक नगर' आदि विशेषताओं से सम्बन्धित करते है। काशी के सामाजिक संरचना के विभिन्न अंग, रूप एवं उसके घनत्व का समुचित विश्लेषण करते है।

शिवानन्द सरस्वती (2002)[30] ने अपने अध्ययन मे पाया कि काशीपुरी देवाधि देव महादेव जी का साक्षात श्री विग्रह हैं। काशी के प्राचीन इतिहास मे सूक्ष्म रूप से काशी विश्वनाथ मंदिर आदि प्रसिद्ध मंदिर को सन् 1658 के बाद में औरगंजेब के द्वारा तोड़े जाने का वर्णन किया है। इस अध्ययन ग्रन्थ मे काशी का इतिहास, काशी माहात्म्य, काशी दर्शन, स्नान दान, काशी की महिमा आदि को विश्लेषित किया गया है।

सुभद्रा सेन गुप्ता (2004)[31]ने अपने अध्ययन मे वाराणसी को मन की एक अवस्था बताया है। ओम नमः शिवाय' के संदर्भ मे हिमालय पुत्री पार्वती एवं शिव के विवाह का उल्लेख करते हुए वाराणसी के इतिहास एवं वर्तमान को प्रस्तुत किया है। अस्सी से दशाश्वमेघ घाट तक 39 घाटों का एवं प्रयाग घाट से आदिकेशव घाट तक 41 तथा कुल 80 घाटों का नामोल्लेख किया हैं।

राणा पी0वी0सिंह (2007)[32] ने अपने अध्ययन मे बताया है कि वाराणसी अपनी विशिष्टता के बदलते व्यक्तित्व, भौतिकवाद और अध्यात्मवाद के बीच सहजीवन का परिणाम हैं। शहर के तीन बुनियादी गुणों की कल्पना उनके द्वारा की गयी है। यथा– एक आदर्श जेनेरिक ब्रह्माण्ड के रूप में प्रतिनिधित्व, जैविक इकाई के रूप मे साक्ष्य के माध्यम से अर्थपूर्ण प्रक्रिया और विरूपण एवं सांस्कृतिक पहचान।

के. चन्दमौली (2012)[33] ने अपने अध्ययन मे काशी की मौज–मस्ती, संस्कृति को प्रस्तुत किया है। इस अध्ययन ग्रन्थ में काशी के सांस्कृतिक जीवन की छवि को प्रस्तुत किया गया है। आर्थिक और सामाजिक परिस्थितियो के कारण बनारसियों के जीवन मे परिवर्तन होता चला जा रहा है, फिर भी जिस प्रकार काशी अपनी परम्परागत जीवन शैली को बनाये रखे हुए है, वह अतुलनीय है।

यादव, डा0 सत्यपाल (2019)[34] ने अपनी पुस्तक 19वीं एवं 20वीं सदी में काशी के गंगाघाट, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में काशी के घाटों की जीवनशैली, उनकी बनावट, धार्मिक महत्व इत्यादि का विस्तृत वर्णन किया।

अध्ययन की समस्या–

काशी की पारम्परिक पुरातन जीवन पद्धति परम्परा, मूल्यों, विश्वासों मे विगत 2 दशकों से तीव्र व संस्थात्मक परिवर्तन होना शुरू हुआ है, जिससे काशी की वैश्विक पहचान खतरे मे पड़ रही है। पिछले 2 दशकों मे काशी मे बाहरी लोगो के आ जाने से जनसंख्या घनत्व, व्यावसायिक बहुलता अत्यधिक बढ़ा है।

आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप काशी में भी इमारते, माल, चौड़ी सड़के, आवागमन के नवीन संसाधन इत्यादि ने काशी की पुरातन गलियों, पवित्र नदी गंगा, मन्दिरों , घाटों दैनिक जीवन पद्धतियों को परिवर्तित कर दिया है। अपराधों मे तीव्र वृद्धि हुई है। धर्म के नाम पर अन्धविश्वासों, कर्मकाण्डों को बढ़ाया जा रहा, लोग तनाव, कुण्ठा, व्यक्तिवादिता, भौतिकता के शिकार हो रहे हैं अर्थात आधुनिकीकरण, वैश्वीकरण का सीधा प्रभाव काशी के मूल स्वरूप को किस हद तक प्रभावित कर रहा हैं, यही जानना इस शोध की मुख्य समस्या है।

अध्ययन का उद्देश्य–

(i) आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप काशी के धार्मिक स्वरूप पर क्या प्रभाव पड़ा है, अध्ययन करना।

(ii) आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप काशी अपने पारम्परिक जीवन शैली को स्थिर रख पा रही है, अध्ययन करना।

(iii) गंगा नदी की पवित्रता व पौराणिक स्वरूप तथा काशी विश्वनाथ सहित समस्त मन्दिरो, 84 घाटों पर प्रदूषण के कारण क्या प्रभाव पड़ा है।

(iv) आधुनिकीकरण के कारण मूल सामाजिक संस्थाओं (परिवार, विवाह, धर्म, शिक्षा व्यवस्था, व्यवसाय इत्यादि) पर क्या प्रभाव पड़ा है।

(v) आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप काशी के विकास पर क्या प्रभाव पड़ा है, अध्ययन करना।

उपकल्पना–

प्रस्तुत शोध प्रस्तावना कुछ उपकल्पनाओं पर आधारित है इसलिए इसमें परीक्षणात्मक प्रकार की उपकल्पनाओं का निर्माण किया गया है, जो कि निम्न है

(i) पवित्र शहर काशी में आधुनिकीकरण से होने वाले परिवर्तन को ज्ञात करना।

(ii) आधुनिकीकरण से उत्पन्न प्रदूषण का गंगा नदी की पवित्रता व स्वच्छता पर प्रभावों का अध्ययन करना।

(iii) आधुनिकीकरण से उत्पन्न आधुनिकता या परम्परा के सामंजस्य का अध्ययन करना।

(iv) आधुनिकीकरण का बनारस की मूल सामाजिक संस्थाओं (परिवार, विवाह, धर्म, शिक्षा व्यवस्था, व्यवसाय इत्यादि) पर क्या प्रभाव पड़ा, इसको जानने का प्रयास करना।

(v) नई पीढ़ी/युवाओं पर आधुनिकीकरण के प्रभावों का अध्ययन करना।

शोध प्रारूप

अध्ययन का समग्र (Study area)

2011 की जनगणना के अनुसार वाराणसी की कुल जनसंख्या लगभग 12 लाख (1,198,491) हैं जहॉ 635,190 पुरूष तथा 563,351 महिलाएँ है, जहॉ साक्षरता दर 79.27: है तथा लिंगानुपात 887 है । इस शोध का अध्ययन क्षेत्र या समग्र सम्पूर्ण काशी/बनारस/वाराणसी है। विभिन्न धर्म, संस्कृति,जाति,मूल्य मनोवृत्ति, विचार–विश्वास के व्यक्ति यहॉ साथ–साथ मोक्ष की प्राप्ति के लिए निवास करते है।[35]

निर्दर्शन (Sampling)–

निदर्शन किसी समग्र का एक छोटा भाग या अंश है जो कि सम्पूर्ण समग्र का प्रतिनिधित्व करता है। वास्तविक रूप मे इतने बड़े समग्र का अध्ययन पूर्ण रूप से सूक्ष्मता से कर पाना सम्भव नहीं इसलिए इस शोध में उद्देश्य पूर्ण निर्देशन प्रणाली का प्रयोग करके ऑकड़े एकत्रित किये गये है। निदर्शन के लिए

दशाश्वमेघ तथा अस्सी क्षेत्र के दुकानदारों, पुराने निवासियों, पण्डितों, मल्हारो, राहगीरों, शिक्षित युवकों–विद्वानों इत्यादि 100 उत्तरदाताओं से साक्षात्कार अनुसूची द्वारा प्रश्नों का संग्रह किया गया है।

शोध की पद्धतियॉ–

प्रस्तुत शोध में विषय के कार्य कारण सम्बन्ध को ज्ञात करने के लिए शोध को अन्वेषणात्मक एवं वर्णनात्मक शोध प्रारूप के आधार पर निरूपित किया गया हैं तथा सम्पूर्ण बनारस का वैयक्तिक अध्ययन पद्धति के आधार पर गहन वैज्ञानिक सूक्ष्म अध्ययन किया गया है।

शोध के उपकरण–

प्रस्तुत अध्ययन मे साक्षात्कार अनुसूची, साक्षात्कार प्रणाली तथा अवलोकन प्रविधि के आधार पर तथ्यों को संकलित किया गया है।

तथ्यों का संकलन–

प्राथमिक स्त्रोत– प्राथमिक स्त्रोत द्वारा तथ्य संकलन हेतु एक साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण किया गया है, जिसको बनारस के स्थानीय निवासियों, दुकानदारों, पंण्डित, मल्लाह मुस्लिमों, डोम, घाट किनारे निवासी (बनारसी) संस्कृत विद्वान, ब्राह्मण, आधुनिक शिक्षित लोगो से मिलकर भरवाया गया हैं।

द्वितीयक स्त्रोत– द्वितीयक स्त्रोंतो के रूप में विभिन्न पुस्तकों, पत्रिकाओं, धार्मिक ग्रन्थों, सरकारी रिर्पोटों पत्रों, सर्वे रिपोर्ट जनगणना, पूर्व प्रकाशित शोध पत्रों, शोध ग्रन्थों तथा विभिन्न वेबसाइटों, इन्टरनेट का प्रयोग किया गया है।

तथ्यों का वर्गीकरण, सारणीयन एवं विश्लेषण–साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से एकत्र किये हुए तथ्य बिखरे एवं अव्यस्थित है। इन बिखरे एवं अव्यवस्थित तथ्यों को विश्लेषण कार्य हेतु समानता एवं भिन्नता के आधार पर भिन्न– भिन्न वर्गो एवं श्रेणियों मे व्यवस्थित किया गया है। वर्गीकरण के पश्चात् तथ्यों को स्पष्ट एवं बोधगम्य बनाने के लिए समस्त तथ्यों का सारणीयन किया गया है, जिसके अन्तर्गत तथ्यों को विभिन्न स्तम्भों एवं पंक्तियों में प्रदर्शित किया गया है। विभिन्न प्रश्नों का सारणीयन निम्न है–

तालिका संख्या–01

काशी की एक पवित्र नगरी के रूप में मान्यता

शैक्षणिकस्तर	व्यावसायिक स्तर								आवृत्ति
	मजदूरी		प्राइवेट नौकरी		सरकारी नौकरी		साधु/पण्डित पर्यटक अन्य सभी		
	हॉ	नहीं	हॉ	नहीं	हॉ	नहीं	हॉ	नहीं	
अशिक्षित	18	2	3	2	0	0	6	2	33(33%)
शिक्षित	2	1	25	5	9	1	2	1	46(46%)
उच्च शिक्षित	0	0	14	4	1	1	0	1	21(21%)
	23(23%)		53(53%)		12(12%)		12(12%)		100

उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है अधिकतर शिक्षित व्यक्ति गंगा किनारे बसी महादेव की नगरी काशी को एक पवित्र पौराणिक, धार्मिक, नगरी मानते है, कुल 46% व्यक्ति जबकि 21% उच्च शिक्षित व्यक्ति भी इस बात से पूर्णतः सहमत है। 33%अशिक्षित व्यक्तियों में सिर्फ 6% व्यक्ति इस बात को स्वीकार नही करते हैं। व्यावसायिक स्तर पर भी देखने पर हम यह पाते है कि 23% मजदूरी करने वालों मे से 20% व्यक्ति इस बात को स्वीकार करते है तथा 53% प्राइवेट नौकरी करने वाले मे से

42% व्यक्ति तथा सरकारी नौकरी के 12% मे से 10% तथा पण्डित मल्लाह, तीर्थयात्री, पर्यटक इत्यादि 12% मे से 8% इस बात को स्वीकार करते है कि काशी, अत्यधिक प्राचीन धार्मिक नगरी हैं।

तालिका संख्या–2

काशी की परम्परा को बनाये रखने में योगदान

	अशिक्षित	शिक्षित	उच्चशिक्षित	आवृत्ति
धर्म शास्त्रीय कर्मकाण्डी विद्वानों द्वारा	8	6	4	18
परिवारजनों द्वारा	2	3	1	6
विभिन्न साहित्यकार, संगीतकार, शिक्षाविद्वों द्वारा	6	0	3	9
समस्त काशी के पुरातन निवासियों द्वारा	10	18	5	33
शासन प्रशासन द्वारा	2	0	2	4
सभी के द्वारा सम्मिलित रूप से	8	15	7	30
	36(36%)	42(42%)	22 (22%)	100

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि काशी की परम्परा को बनाये रखने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान समस्त काशी के पुरातन निवासियों का है क्योंकि वे ही काशी की दैनिक जीवन शैली, पूजा पद्धति, कर्मकाण्डो, परम्पराओं, रीतिरिवाजों को निभाते हैं। लगभग 33% उत्तरदाता यह स्वीकार करते है जिसमें से 18% शिक्षित है, 10% अशिक्षित है, वहीं 5% उच्चशिक्षित है। वही लगभग 30% उत्तरदाता सभी के सम्मिलित योगदान (धर्मशास्त्रीय कर्मकाण्डी विद्वान, परिवारीजन,विभिन्न साहित्यकार, संगीतकार, शिक्षाविद, समस्त काशी के पुरातन निवासी, शासन–प्रशासन इत्यादि सभी का) काशी की परम्पराओं को अक्षुण्ण रखने में जरूरी योगदान मानते है जिनमं 15% अशिक्षित है, 8% शिक्षित है तथा 7% उच्च शिक्षित है।

तालिका संख्या–3

काशी की जीवनशैली को बनाये रखने में योगदान

	अशिक्षित	शिक्षित	उच्चशिक्षित	आवृत्ति
काशी के विभिन्न मन्दिर	12	12	3	27
समस्त घाट	6	6	6	18
आश्रम	2	4	2	8
मठ	1	2	1	4
काशी की जीवन शैली	15	18	10	43
	36(36%)	42(42%)	22 (22%)	100

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि काशी की परम्पराओं को बनाये रखने में काशी के विभिन्न मन्दिरों, आश्रमों, घाटो, मठों की तुलना में काशी वासियों की जीवन शैली का योगदान सर्वाधिक है, लगभग 43% उत्तरदाता यह कहते है जिनमें 15% अशिक्षित है, 18% शिक्षित तथा 10% उच्चशिक्षित है, वही

29% उत्तरदाता काशी के मन्दिरों का योगदान भी स्वीकार करते है जिनमें 12% अशिक्षित है, 12% शिक्षित तथा 3% उच्च शिक्षित है। कुल उत्तदाताओं में लगभग 36% उत्तरदाता अशिक्षित है वही 42% शिक्षित तथा 22% उच्चशिक्षित उत्तरदाता है।

तालिका संख्या– 4

आधुनिकीकरण के कारण काशी की परम्पराओं में परिवर्तन का प्रभाव

कारण	अशिक्षित	शिक्षित	उच्च शिक्षित	आवृत्ति
बनारस में ग्रामीण क्षेत्रों से प्रवास के कारण	5	4	2	11:
आधुनिक शिक्षा	6	8	6	20:
मुद्रा प्रेम व उच्च जीवन स्तर की चाह	7	8	4	19:
पारम्परिक जीवन मूल्यों के प्रति निराशा	3	6	2	11:
वैश्वीकरण, भौतिकतावादी जीवन शैली का प्रभाव	9	14	8	31:
नही, कोई परिवर्तन नही हुआ है।	6	2	0	8:
	36%	42%	22%	100

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि लगभग 92: उत्तरदाता यह मानते है कि नवीन परिवर्तनों, आधुनिकीकरण के परिणामस्वरूप, काशी के पुरातन स्वरूप, उसकी परम्पराओं में परिवर्तन दृष्टिगोचर हो रहा है वहीं 8% उत्तरदाताओं के अनुसार काशी के मूल परम्परा मे कोई परिवर्तन नही हुआ है। 92% उत्तरदाताओं में से 31% उत्तरदाता वैश्वीकरण, भौतिकतावादी जीवनशैली के कारण काशी के परम्पराओं मे परिवतन को मानते है जिनमें 9% अशिक्षित, 14% शिक्षित तथा 8% उच्च शिक्षित हैं, जबकि 20% उम्मीदवारों के अनुसार आधुनिक शिक्षा के कारण, 19% उत्तरदाताओं के अनुसार मुद्रा प्रेम व उच्च जीवन स्तर की चाह के कारण, 11% बनारस में ग्रामीण क्षेत्रों के लोगो के प्रवास के कारण तथा शेष 11% पारम्परिक जीवन मूल्यों के प्रति निराशा के कारण काशी की मूल परम्पराओं मे परिवर्तन को स्वीकार करते हैं।

तालिका संख्या–5

आधुनिकीकरण के कारण काशी की संरचनाओं/संस्थाओं में परिवर्तन

	अशिक्षित	**शिक्षित**	**उच्च शिक्षित**	**आवृत्ति**
सामाजिक संस्थाओं, में पारम्परिक संचरना में परिवर्तन	**10**	**18**	**8**	**36:**
संयुक्त परिवार में परिवर्तन	2	6	2	10%
जाति संस्तरण में परिवर्तन	0	5	3	8%
धार्मिक संस्थाओं मे परिवर्तन	6	2	4	12%
सांस्कृतिक संस्थाओं मे परिवर्तन	6	3	2	11%
आर्थिक संस्थाओं में परिवर्तन	12	8	3	23%
	36%	42%	22%	100

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि वैश्वीकरण के दौर मे काशी की समस्त सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक, संयुक्त परिवार तथा जाति संस्तरण मे परिवर्तन हो रहा है, लगभग 36: उत्तरदाता सामाजिक व पारम्परिक संरचना मे परिवर्तन को स्वीकार करते है, जिसमें 10: अशिक्षित, 18:

शिक्षित तथा 8ः उच्चशिक्षित है, जबकि 23% उत्तरदाता आर्थिक संस्थाओं में परिवर्तन स्वीकारते है, 12% उत्तरदाता धार्मिक संस्थाओं में परिवर्तन, 10% सांस्कृतिक संस्थाओं में परिवर्तन तथा 10% उत्तरदाता संयुक्त परिवार में परिवर्तन तथा 8ः उत्तरदाता परिवर्तन जाति संस्तरण में परिवर्तन को स्वीकार करते हैं।

तालिका संख्या–6

काशी की वैश्विक पहचान बनाने के लिए सरकार द्वारा किये जा रहे कार्य

	अशिक्षित	शिक्षित	उच्च शिक्षित	आवृत्ति
सफल हुआ है	16	22	15	53
असफल हुआ है	12	14	4	30
कह नही सकते है	8	6	3	17
	36%	42%	22%	100

उपरोक्त तालिका से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान मे मन्दिरों, घाटो का पर्यटन की दृष्टि से सौन्दर्यीकरण तथा सरकार द्वारा काशी के विकास के लिए किये जाने वाले अन्य कार्य, काशी की वैश्विक पहचान बनाने में सफल रहे है, 53% उत्तरदाता इस बात से सहमति व्यक्त करते है, जिनमें 16ः अशिक्षित है, 22% शिक्षित तथा 15% उच्चशिक्षित, जबकि 30% उत्तरदाता इस बात से सहमत नहीं है, वरन् 17% उत्तरदाता असंमसजस की स्थिति मे है। अतः हम यह मान सकते है कि काशी के घाटो, मन्दिरों का सरकार द्वारा किये जाने वाला सौन्दर्यीकरण काशी की वैश्विक पहचान बनाने मे सहायक है।

निष्कर्ष–

सम्पूर्ण विश्व मे काशी एक अपूर्व नगरी है। साधारणतः लोग इसे'' हिन्दू धर्म का लघु ब्रह्माण्ड'' '' भारतीय संस्कृति का आम्नाय नगर'', विश्व का प्राचीनतम जीवित नगर ' ''शाश्वत नगर', '' धार्मिक नगर'' आदि विशेषताओं से सम्बोधित करते रहे है। श्रद्धालु सनातनधर्मियों द्वारा इसके प्रति जिस उत्कट प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है, उसमें बाबा श्री विश्वनाथ की नगरी, मोक्षदायिनी काशी, शिव के त्रिशूल पर बसी तीनों लोकों से न्यारी काशी आदि उक्तियॉ बहुचर्चित है।

विलियम होजेस ने ट्रैवल्स इन इंडिया (1783 ई) नामक पुस्तक मे लिखा है कि बनारस एक बड़े क्षेत्र की राजधानी तथा ब्राम्हाणो के ज्ञान का केन्द्र था, जिनके धार्मिक तथा सामाजिक जीवन पर विदेशियों का रतीभर भी प्रभाव नही पड़ा है।

जबकि **मार्क ट्वेन** जो सिर्फ 5 दिन काशी मे रहे थे, काशी के बारे मे एक दिलचस्प टिप्पणी करते है, बनारस इतिहास से अधिक प्राचीन है, परम्परा से अधिक प्राचीन है, किंवदंतियों से अधिक प्राचीन है और इन सबकी सम्मिलित प्राचीनता से दुगुना अधिक प्राचीन दिखाई देता है।'' **वियना विश्वविद्यालय के डॉ हाबर्ट फील वैक्सी** ने लिखा है कि ''वाराणसी के नागरिको का यह सौभाग्य है कि भारतीय संस्कृति की गोद मे जन्म लेने से वे एक अति दिव्य परिवेश मे रह रहे हैं। यह एक ऐसी संस्कृति है जिसकी तुलना किसी अन्य स्थान की संस्कृति से, इतिहास से नहीं की जा सकती।''[36]

परिवर्तन ही जीवन का शाश्वत तत्व हैं, लगभग 5500 वर्षो के बाद काशी भी काल–प्रवाह मे काफी आगे निकल आई है। यह हमेशा से परिवर्तनों का केन्द्र रही है। शिव जी का आनन्द–कानन, आनन्द वन, उनके गणों का आवास, रूद्रवास बना।फिर वह सिद्धो, योगियों और मुनियों की तपस्थली वती और पावन गंगा ने उसे पवित्र तीर्थस्थान बनाया । कालांतर मे गंगा, वरूणा और असी नदियों के किनारे नगर बसने से वाराणसी बना। पिछले कुछ दशकों से काशी नगर का विस्तार तेजी से हो रहा है।

नये–नये लोग, नयी–नयी बस्तियॉ नये–नये यंत्र और नये–नये नारे लग रहे हैं। जिस अनुपात मे नगर की जनसंख्या बढ़ रही है, उसी अनुपात में नगरीय समस्यायें भी बढ़ी है।

यह सांस्कृतिक अधःपतन, सचमुच ही बहुत हीन स्तर का है। बात सिर्फ यह नही है कि डिस्को, ड्रम और गिटार ने नर्तकियों एवं संगीत की जगह ली है, ध्यान धारण माइक्रोफोन पर सिखाया जा रहा है और साधु संत हाथ में मोबाइल फोन लिए घूम रहे है। एक जगह से दूसरी जगह मोटरकारों मे आ जा रहे है या फिर बच्चे घरों मे मम्मी डैडी वाली भाषा बोल रहे है, अपने जन्मदिन पर मोमबत्ती को फूॅकना उन्हे अच्छा लग रहा है। बात यह है कि, बनारस को विश्व संस्कृति लीलने जा रही है। सांस्कृतिक दृष्टि से सर्वथा स्वतंत्र जीवन जीने की अपनी रीतियॉ– पद्धतियॉ जब मिटने लगती है तब उसके साथ ही अपनी कुछ बहुमूल्य चीज खो जाने का अपार दुःख भी होता हैं। वह पहले जमाने के लोगो मे होने वाली घनिष्ठता, उदारता , सुरूचि , आस्था गायब होती जा रही है। तीन हजार वर्षो से एक ही तरह से चली आ रहीं जीवनशैली, बिखरती जा रही हैं लगता है अपनी भूमि, धर्म और संस्कृति पर हुए अत्याचारों से हमने कोई सबक नही सीखा है। आध्यात्मिक लहर, व्यापारिक लहर में डूब गई हैं। धार्मिक कर्मकाण्डो का आडंबर, मानवीय मुद्दों से हमेशा, अधिक महत्वपूर्ण माना गया हैं विद्वतापूर्ण कार्य कभी पुराने ग्रन्थों की व्याख्याओं एवं आलोचनाओं के दायरे से बाहर नही गये (मंडन–खंडन और खंडन–मंडन)। लगता है, कि संस्कृति का यह ह्रास काफी पहले से ही शुरू हुआ है। '' अपसंस्कृतियॉ काशी की सदियों से चली आ रही सहिष्णुता की अमूल्य धरोहर है, परन्तु वे अपने अपने दायरों मे इतनी सिमट गई है कि एक –दूसरे के विरोध मे उठ खड़ी हो रही है।'' संकट के समय मे लोगो ने आर्त भाव से सिर्फ देवी मॉ को गुहार लगाई है '' मॉ हमे बचाओं।'' देश पर आन पड़े संकट का धैर्य से सामना करने के लिए हमने इकट्ठा होकर कोई ठोस एवं उचित प्रयास नही किये है। ''हम निष्क्रिय हो गये , भ्रष्ट होते गये, पीछे हटते गये। गंगा नदी को स्वच्छ व निर्मल बनाने के लिए कोई योजना बनाना, उपक्रम करना आवश्यक है। आवश्यक है काशी को, उसकी दीप्ति एवं दिव्यता को बचाने के लिए योजना बनाना भी.... आवश्यक है, और उस पर अमल करना भी।

यह सही है कि पश्चिमीकरण, भौतिकतावाद तथा उपभोगितावाद के कारण हम तथाकथित रूप से उन्नत और समृद्ध हुए है। पर सांस्कृतिक दृष्टि से हम रसातल में पहॅुच चुके है। एक ही तसल्ली है कि हमारी मनोरचना ही ऐसी है कि हमारी संस्कृति नित नई होती जाती है, वह कभी भी पूरी तरह से मिटती नही। काशी की विशिष्टता यही है कि यहॉ आधुनिकीकरण के समस्त बाह्य उपकरणों को व्यवहार मे लाने वाला आधुनिकतम व्यक्ति भी जब किसी गली में गुजरता है तो वह मंदिर के सामने सर झुका देता है।पर दुःख की बात यह है कि हमने अपनी प्राचीन दिव्य महिमा खो दी है।आनंद कानन की वह शांति, दिव्य आंनद की बीती बात हो गई है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. चन्दमौली के, आनंद कानन काशी (2012), पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग, दुर्गाकुण्ड वाराणसी, पृष्ठ संख्या 38–39
2. मोतीचन्द्र, डॉ0,काशी का इतिहास (1985) द्वितीय संस्करण, विश्वविद्यालय प्रकाशन, चौक, वाराणसी पृष्ठ संख्या–19
3. पूर्वोक्त, चन्दमौली के, (2012), पृष्ठ संख्या 12–13
4. सुकुल, पं कुबेरनाथ, वाराणसी वैभव (2008), द्वितीय संस्करण, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद पटना, पृष्ठ संख्या 35–36

5. सरस्वती, वैद्यनाथ, भोग–मोक्ष समभाव, काशी का सामाजिक– सांस्कृतिक स्वरूप (2000) प्रथम संस्करण डी0के0 प्रिंण्टवर्ल्ड प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, पृ0सं0 16
6. दूबे, डॉ जगदीश नारायण, काशी रहस्यम् (1984 ई.) प्रथम संस्करण, आदर्श प्रकाशन मन्दिर, खजुरी वाराणसी, पृ0सं0 51
7. सिंह, डॉ0 देवी प्रसाद (प्रधान संपादक), काशी की जीवनशैली (2007) भारतीय इतिहास संकलन समिति, काशी प्रान्त, वाराणसी, प्राक्कथन
8. केजरीवाल, ओमप्रकाश, काशी नगरी एकः रूप अनेक (2010), प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय,भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ0सं0 25
9. प्रभारानी,डॉ0,वाराणसीःसांस्कृतिक समन्वय का प्रतीक (2011), पिल्ग्रिम्स पब्लिशिंग, वाराणसी, दिल्ली, पृ0सं0 103
10. पाण्डेय, डॉ0 पूनम, 19 वीं सदी का बनारस, (2016), पिलग्रिम्स पब्लिशिंग, वाराणसी पृष्ठ संख्या– 82
11. यादव, डॉ0 सत्यपाल, 19 वीं एवं 20वीं सदी में काशी के गंगा घाट, सामाजिक– आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में (2019) कला प्रकाशन , न्यू साकेत कालोनी, वाराणसी, पृष्ठ संख्या 52
12. सिंह, डॉ मीरा, भारतीय समाज मे परम्परा और आधुनिकता की स्थितियॉ समाजशास्त्रीय विश्लेषण, राधा कमल मुकर्जीः चिन्तन परम्परा, पत्रिका वर्ष 12 अंक 2, जुलाई दिसम्बर 2010
13. दूबे S.C, Contemparary India and its modernization (1974), विकास पब्लिशिंग हाउस लिमिटेड, दिल्ली, पृ0सं0 18
14. पूर्वोक्त चन्द्रमौली के, पृ0 सं0 34–35
15. पूर्वोक्त सरस्वती वैद्यनाथ, पृ0सं0 116
16. प्रिंसेप, जेम्स, बनारस इलस्ट्रेट टेड इन ए सीरीज ऑफ ड्राइंग, वाराणसी, 1833, टिप्रिंट 1996, पृ0सं0 112
17. एम0ए0 शेरिंग, बनारस दि सेक्रेड सिटी ऑफ द हिन्दूज, वाराणसी 1868, रिप्रिंट 2016 ।, पृ0सं0 88
18. हैवेल, ई0बी0, बनारस दि सेक्रेड सिटी वाराणसी,1905 रिप्रिंट 1990 विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, पृ0सं0 52
19. सुकुल, कुबेरनाथ, वाराणसी वैभव, वाराणसी, पटना पब्लिकेशन्स, 1977, पृ0सं078
20. सर्राफ, मुकुन्द लाल, काशी सर्वांग सुन्दर कैसे बने,, काशी तीर्थ सुधार ट्रस्ट, वाराणसी 1971, पृ0सं0 29
21. डाइना एल. एक. बनारस सिटी ऑफ लाइट, नई, दिल्ली, 1982
    Penguin Random House India गुड़गॉव, हरियाणा, दिल्ली
22. उपाध्याय, बलदेव, काशी की पाण्डित्य परम्परा, वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1983, पृ0सं0 28
23. पूर्वोक्त, डॉ मोतीचन्द्र, काशी का इतिहास
24. गुप्ता, कृष्णमूर्ति तथा नौटियाल, भवगती प्रसाद (सं) गंगा (एक प्राकृतिक तथा सांस्कृतिक धरोहर) नई दिल्ली 1991
25. खरे, सुरेन्द्र मोहन, वाराणसी दर्शन, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी 1992–93 पृ0सं0 10
26. कृष्ण, राम, काशीः अतीत की झलकियॉ 1994, विनोद कुमार रत्नाकर भवन, वाराणसीश पृ0सं0 15
27. डॉ0 हरिशंकर, काशी के घाट कलात्मक एवं सांस्कृतिक अध्ययन (1996), विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ0सं0 48

28. मेहता, डॉ0 भानुशंकर (1999) सो कासी से इस कस न, बुक फेथ इण्डिया, दिल्ली, पृ0सं0 39
29. सरस्वती, वैद्यनाथ, 2000, भोग–मोक्ष समभावःकाशी का सामाजिक–सांस्कृतिक स्वरूप, डी0 के0 प्रिन्ट वर्ल्ड प्रा0लि0 नई दिल्ली, प्राक्कलन।
30. सरस्वती, शिवानन्द, 2010 काशी दिव्य दर्शन, काबरा आफ सेट, वाराणसी।
31. गुप्ता, सुभद्रा सेन, वाराणसी ए पिलग्रिम्ज टू लाइट, 2004 रूपा कं, नई दिल्ली।
32. राणा, पी0बी0 सिंह एवं राणा, प्रवीण सिंह, 2002, बनारस रिजनः स्प्रीचुअल एण्ड कल्चरल गाईड, इंडिका बुक्स, नई दिल्ली, पृ0सं0113
33. पूर्वोक्त, के चन्दमौली , आंनद कानन काशी पृ0सं0 444
34. यादव डा0 सत्यपाल (2019) 19वीं एवं 20वीं सदी में काशी के गंगाघाट, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक परिप्रेक्ष्य में, विश्वविद्यालय प्रकाशन, प्राक्कथन
35. अन्तरिम ऑकड़े, जनसंख्या 2011, भारत सरकार।
36. पूर्वोक्त चन्द्रमौली के, पृ0 सं0 202

भारत में नगर नियोजन

अमित मालवीय,
शोध छात्र समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी, उत्तर प्रदेश भारत

नगर नियोजन एक व्यावहारिक विषय हैं जिसके अन्तर्गत वर्तमान नगर और इर्द–गिर्द के क्षेत्रों के विकास, सुधार, पुर्ननिर्माण एवं उसमें नये नगरीय क्षेत्रों के निर्माण सम्बन्धी समयबद्ध योजना में निर्मित और क्रियान्वित की जाती है इसका मुख्य उद्देश्य नगरीय जीवन की गुणवत्ता में सुधार करना है नगरी जनसंख्या की तीव्र वृद्धि के कारण नगरों की संख्या और आकारों में बेतहाशा वृद्धि हुई है और उनके अन्तर और अन्तर्नगरिय विषमताओ में बढ़ोतरी हुई है बल्कि नगरों में भोजन आवास परिवहन जलापूर्ति जल निकास प्रदूषण जनस्वास्थ्य आदि समस्यायें जटिल होती जा रही हैं इनका निराकरण नगरी नियोजन के द्वारा ही किया जा सकता है जिससे न केवल वर्तमान नगरों को अधिक अच्छा और रहने योग्य बनाया जा सकता है बल्कि उन्हें भावी पीढ़ी के लिए भी बेहतर निवास स्थल के रुप में सुरक्षित रखा जा सकता है नगरीय जीवन को आदर्श के अधिकाधिक निकट पहुंचाने का प्रयास हैं जिससे वर्तमान के साथ–साथ नगर की भावी वृद्धि के सन्दर्भ में भविष्य के नगरीय जीवन को अच्छा बनाया जा सके नगर नियोजन नगर की आर्थिक सामाजिक और भौतिक विशेषताओ मे एकांकी और सामूहिक दोनों रूपों में सुधार का प्रयास करता है ताकि नगर का एक ऐसा ढाँचा तैयार किया जा सके जो उसके भौतिक पर्यावरण हेतू अनुकूलतम हो नगर नियोजन की विचारधारा नगर के लोगों के लिए सामाजिक आर्थिक एवं नैतिक परिस्थितियों के पुनर्निर्माण के लिए आवश्यक हो जाता है नगरीय आयोजन नगरों की विघटनात्मक परिस्थितियों का पुनर्निर्माण करने के लिए नगरीय समूह की गतिशीलता घनत्व मानसिक दशा मनोरंजन के साधन बाल उद्योग निवास स्थान तथा श्रमिकों की आधुनिकता बस्तियों आदि क्षेत्रों में सुधार करने के लिए एक महत्वपूर्ण कार्यक्रम है2

नगर नियोजन नगरीय जन समूहो में सहयोग समता स्वास्थ्य उपयोगिता एवं शौर्य की वृद्धि करने का एक वैज्ञानिक प्रयास है। नगरों में भौतिक दृष्टि से विकसित तथा स्वास्थ्य के लिए आवश्यक भवनों का निर्माण करने की क्रिया को नगर नियोजन कहा जाता है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि नगरों में उचित स्थानों पर बाजारों का निर्माण कार्यालयों की स्थापना और पार्क एवं मनोरंजन की व्यवस्था आदि से सम्बन्धित विकास के कार्यक्रमों के एक संगठित योजना को ही नगर नियोजन के नाम से संबोधित किया जाता है। इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि नगर नियोजन की अवधारणा का विकास नगर को सुव्यवस्थित एवं सुदृढ़ करने के लिए किया जाता है नगर नियोजन जहां नगर की विभिन्न समस्याओं के निराकरण के लिए बनाया जाता है वही नागरीको को अधिक से अधिक नगरीय सुविधाए उपलब्ध करना भी इसका उद्देश्य होता है इस हेतू नगरों के पुनर्निर्माण की आवश्यकता पड़ती है नगर में अच्छे यातायात के साधन चिकित्सालय मनोरजन के साधन कीड़ा स्थल आवास व्यवस्था एवं गंदी बस्तियों का सुधार आदि नगर नियोजन की व्यवस्था के अन्तर्गत आते हैं इस तरह यह कहां जा सकता है कि नगर की विभिन्न समस्याओं का निराकरण नगर नियोजन के माध्यम से किया जाता है नगर के भौतिक स्वरुप में भी इसकी सहायता से परिवर्तन किया जाता है ताकि लोगों को स्वच्छ पर्यावरण प्रदान किया जा सके नगरों को व्यवस्थित ढग से संचालित करने के लिए नगर नियोजन का महत्व दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं के अन्तर्गत नगर नियोजन को विशेष महत्व

दिया गया है भारत में प्राचीन काल से ही नगरीय नियोजन को अपनाये जाने के संकेत मिलते हैं अनेक प्राचीन ग्रंथों जैसे,वास्तुशास्त्र,मनसारा,अर्थशास्त्र कौटिल्य आदि में वास्तु शिल्प और नगर नियोजन के विभिन्न विधियों का उल्लेख मिलता है मोहनजोदड़ो, हड़प्पा,लोथल आदि भनावशेषों से सिन्धु घाटी सभ्यता काल में नियोजित नगरों के निर्माण का स्पष्ट प्रमाण मिलता है मोहनजोदड़ो नियोजित रूप मे बसाया गया था यहां चार प्रमुख और कई छोटी–छोटी सड़के थी तथा गलियां समानान्तर और एक दूसरे को लम्बवत काटती हुयी बनी थी मुख्य सड़क चौड़ाई 10 मीटर और छोटी सड़क की चौड़ाई 7 मीटर थी सड़क के मोड़ पर स्थित मकान का किनारा गोलाई में बनाया जाता था ताकि वाहनों के आवागमन में कठिनाई न हो मोहनजोदड़ो का महान स्नानागार 1728 मीटर क्षेत्रफल में और हड़प्पा का महान अन्नागार 2000 मीटर क्षेत्रफल में फैला हुआ था इन नगरों का व्यापारिक सम्बन्ध मिसोपोटामिया और नील घाटी के नगरों से भी होने का अनुमान लगाया गया है सिंधु घाटी की सभ्यता से जुड़े नगरों में लोथल, रोपण, कोटला, निहाग, वाणावली आदि भी उल्लेखनीय है।1

वैदिक काल में अयोध्या, जनकपुर, हस्तिनापुर, मथुरा, वैशाली, पाटलिपुत्र, कौशाम्बी, सांची, कांचीपुरम, मदुरई आदि नगरों का निर्माण योजना बद्ध रूप में किया गया जिसमें अलग–अलग कार्यों के लिए अलग–अलग क्षेत्र बनाए गए थे यहां सभी प्रकार की नगरीय सुविधाये उपलब्ध होती थी रामायण कालीन अयोध्या नगर लगभग 5.500 मीटर की लम्बाई और 1.370 मीटर की चौड़ाई में विस्तृत था नगर में कई चौड़ी और सुन्दर सड़के थी जिनके किनारों पर पेड़ लगे हुए थे नगर में पेय जल की समुचित व्यवस्था थी प्राचीन काल के दौरान में नगरीय विकास, राजधानी नगर, प्रशासकीय गढ़ या दुर्ग नगर व धार्मिक,सांस्कृतिक केंद्र के रूप में विभाजित था बौद्ध कालीन भारत प्रशासकीय से 16 महाजनपदों में विभाजित था नगरों में साकेत तथा श्रावस्ति (कौशल) कोशाम्बी (वत्स) उज्जयिनी (अवन्ति) काशी, वैशाली (मल्ल) मिथिला इन्द्रप्रस्थ (कुरु) मथुरा (सूरसेन) तक्षशिला (गन्धार) राजगृह (मगध) आदि प्रमुख थे मेगस्थनीज के अनुसार पाटलिपुत्र नगर 16 कि. मी.के लम्बाई 3.2 किलोमीटर की चौड़ाई से विस्तृत था जो की लकड़ी से निर्मित चारदीवारी से घिरा था जिससे 64 प्रवेश द्वार बने थे चारदीवारी के बाहर चौड़ी और गहरी खायी थी जिसमें सोन नदी का जल भरा रहता था शाही महल नगर के महत्त्व में स्थित था जो चारों ओर से पार्क फब्बरों और पानी के तालों से घिरा हुआ था वैदिक काल के उपरान्त भी नगर नियोजन का क्रम जारी रहा मुगल काल में विकसित आगरा,फतेहपुर सीकरी,श्रीनगर,शाहजहांवाद,दौलताबाद फिरोजाबाद,जलालाबाद इत्यादि नगर बसाये गये थे भारत में अंग्रेजी शासन के दौरान पश्चात पद्धति पर नगर नियोजन की शुरुआत की गयी परन्तु इन योजनाओं में नगरों में रहने वाले लोगों को अधिक सुविधाये प्रदान करने अथवा उनके जीवन स्तर को ऊपर उठाने की अपेक्षा प्रशासकीय और सैनिक उद्देश्यों पर अधिक बल दिया गया यही कारण है कि सन् 1915 में मद्रास के तत्कालीन गवर्नर लार्ड पेण्टलैण्ड ने महान नगर नियोजक पैट्रिक गिडिज़ को भारत में आमन्त्रित किया गिडिज ने भारत की नगरी समस्याओं का सूक्ष्म अध्ययन किया जिसके सुझाव के आधार पर नगर नियोजन का कार्य नगरपालिकाओं को सौंपा गया और मुंम्बई (1898) मैसूर (1903) कोलकाता(1911) लखनऊ (1919) कानपुर (1919) इलाहाबाद (1920) आदि नगरों में ईम्प्रूवमेण्ट ट्रस्टो की स्थापना की गयी 30 वर्षों की अवधि में 71 विकास योजनाओं को कार्यान्वित किया जिसमें नगरीय भूमि के अधिग्रहण मलिन बस्तियों के हटाने कम आय वर्ग वालों के लिए आवासों के निर्माण सड़कों के निर्माण एवं चौड़ी करने आदि के कार्यक्रम प्रमुख थे।2

दिसम्बर 1911 में ब्रिटिश सरकार ने राजधानी नगर के रूप में नई दिल्ली के निर्माण का निश्चय किया पुरानी दिल्ली के दक्षिण की चौरस भूमि को नगर बसाव

हेतु उपयुक्त माना इस नगर की स्थापना 1280 हेक्टेयर भूमि पर 65,000 लोगों के लिए की गयी यह भारत का प्रथम उपवन नगर था जिसकी योजना प्रसिद्ध नगर नियोजक एडविन ल्यूटेन्सन द्वारा बनाई गयी थी 1911 में प्रसिद्ध उद्योगपति जमशेदजी टाटा ने वास्तुशिल्पी जूलियन केनेडी के निर्देशन में जमशेदपुर नगर का निर्माण शुरु कराया बाद में इसमे एफ०सी० टेम्पुल(1920) पी०सी० स्टोक्स(1936) एवं आटो कोनिक्सबर्जर (1943) ने समुचित सुधार किया सम्पूर्ण नगर दो भागों में बाटा गया है औद्योगिक एवं आवासीय इन दोनो क्षेत्रों के समीप मनोरंजन स्थल,बाजार शिक्षा,संस्थाओ एवं सड़को के लिये पर्याप्त स्थान सुरक्षित रखा गया है इस प्रकार जमशेदपुर देश का एक स्वच्छ,सुन्दर और सुनियोजित औद्योगिक नगर है स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त भारत मे नगर नियोजन हेतू विशेष ध्यान दिया गया न केवल विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओ में नगरों में मकानों की कमी को दूर करने के लिए मकानों के निर्माण पर बल दिया गया बल्कि मलिन बस्तियों परिवहन जलापूर्ति जल निकास प्रदूषण आदि नगरीय समस्याओं के निराकरण हेतू अनेक कार्यक्रम शुरु किये गये वही दूसरी तरफ उद्योगों के विकास हेतु दुर्गापुर,भिलाई राऊरकेला,चितरंजन आदि नगरों को प्रशासनिक केन्द्रों के रूप मे चण्डीगढ़ भुवनेश्वर,गांधीनगर,ईटानगर आदि को बन्दरगाहो के रूप मे कांधला पराद्वीप आदि नियोजित नगरो को विकसित किया गया।

नगर व्यवस्थित रूप से विकसित हो इसके लिए सरकार द्वारा धीरे–धीरे नगर नियोजन को वरीयता दी जाने लगी इस तथ्य का अनुमान लगाना आसान था कि आगामी समय में नगरों में जनसंख्या का दबाव बढ़ने वाला है अतः प्रत्येक प्रांत द्वारा नगर एवं ग्राम नियोजन विभागों का निर्माण किया गया ताकि इस संबंध में स्थानीय स्तर पर योजना बनायी जा सके देश के संतुलित एवं व्यवस्थित विकास के लिए राज्य द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं के निर्माण की रणनीति स्वीकार की गयी थी इसके अन्तर्गत नगरी विकास को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया आवास मंत्रालय के अन्तर्गत नगरी नियोजन विभाग द्वारा बनायी गयी योजनाओं के माध्यम से नगरों के विकास का प्रयास किया गया इसकी एक झलक दिल्ली के आस–पास के उत्तर प्रदेश क्षेत्रों के व्यवस्थित विकास के रूप में देखा जा सकता है यह नगर नियोजन का ही परिणाम है कि नोयडा ग्रेटर नोयडा फरीदाबाद गुरुगांव और गाजियाबाद के आस–पास के क्षेत्र योजनाबद्ध रूप से विकसित किये जा रहे हैं वर्तमान समय में नगर नियोजन के कार्य को अत्यन्त गम्भीरता से लिया जा रहा है क्योंकि तेजी से गतिशील हो रही जनसंख्या को देखते हुए यह अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है कि नगरों विशेष रूप से महानगरों की स्थिति अत्यन्त गंभीर होने वाली है अतः हर नगर में विकास प्राधिकरण एवं राज्य सरकारें इन संस्थाओं को करोड़ों रुपए का अनुदान सुलभ करा रही हैं कई नगरों के विकास एवं सौंदर्यीकरण के लिये अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं जैसे अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष विश्वबैंक आदि से भी आर्थिक सहायता प्राप्त कर रही हैं कुछ कतिपय देश भी (जैसे जापान) कुछ विशिष्ट नगरों (भगवान बुद्ध से जुड़े नगर) के विकास के लिए आर्थिक सहयोग उपलब्ध करा रहे हैं योजना आयोग द्वारा भी नगरीय विकास के लिये आर्थिक सहयोग उपलब्ध कराया जाता है।

भारत के नवीन नियोजित नगरों में चण्डीगढ़ आधुनिक ढंग का एक नियोजित नगर है जिसमें भारतीय नियोजको द्वारा किये गये प्रयास निश्चित ही बौद्धिक एवं साहसी है चण्डीगढ़ नगर का प्लान 1950 में अलबर्ट मेयर द्वारा तैयार किया गया था बाद में प्रसिद्ध वास्तु–शिल्पकार लीकोरविजियर ने इसको संशोधित करके 1952 में प्रस्तुत किया। इस का कुल क्षेत्रफल 57.6 वर्ग किलोमीटर है 2011 की जनगणना के अनुसार इस की जनसंख्या 11,55,450 थी यह प्रशासकीय शैक्षिक एवं सांस्कृतिक नगर है नगर को 46 सेक्टरों में विभक्त किया गया है हर एक सेक्टर को 800× 1200 मीटर के आकार में बांटा गया है प्रत्येक सेक्टर अपना व्यापारिक केन्द्र सामुदायिक केन्द्र स्वास्थ्य

केन्द्र और एक हायर सैकेंण्डी स्कूल रखता है चण्डीगढ़ नगर का संगठन आयताकार प्रतिरूप में है जो अन्य नगरों से भिन्न है नगर के वास्तविक स्वरूप का निर्धारण दोनों और रहने वाली पटियाली राव तथा सुखना राव नदियों ने किया है नगर का संगठन स्वरूप भौगोलिक तथ्यों को ध्यान में रखकर गया है नगर नियोजन चण्डीगढ़ को 30 खण्डों में बाटता है इनमें से 24 खण्ड रिहायशी उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं यहाँ आवासीय खण्डों का वर्गीकरण आय व व्यवसाय वर्गों के आधार पर किया गया है चण्डीगढ़ प्राकृतिक दृश्यों की सुन्दरता रखने वाला नगर है प्राकृतिक दृश्यों की सुन्दरता सेक्टर प्रणाली का प्रयोग विभिन्न प्रकार के ट्रैफिक के लिए सात प्रकार की सड़कों का निर्माण नगर के एक भाग से दूसरे भाग तक खुले स्थानो तथा हरी पेटी वास्तुशिल्प का सुन्दर व सादा नमूना हवादार व आरामदायक इमारतें अन्य उपयोगी सेवाओं जैसे जल–प्रदाय स्वच्छता प्रकाश आदि की समुचित उपलब्धता नगर के उत्तर में एक बड़ी झील जो इसकी सुन्दरता को चाँद चाँद लगा देती है इस झील के चारों तरफ बहुत ही अच्छा पार्क बनाया गया है जो नगरवासियों को उनके खाली समय में मनोरंजन प्रदान करता हैं यहाँ पर गर्मियों में अधिकतम तापमान 44 अंश तथा सर्दियों में न्यूनतम 1.7 अंश सेंटीग्रेड तक पहुँच जाता है इस नगर का रूप भी बड़ा सुन्दर है इसका डिजाइन व निर्माण कार्य देखने में बड़ा भव्य और आकर्षक लगता है यह स्वतन्त्र भारत का प्रथम नियोजित नगर है।3 नोएडा की स्थापना यमुना नदी की पूर्वी किनारे पर की गई है जिसे नियोजित नगर के रूप में न्यू ओखला इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट अथॉरिटी ने बसाया है यह उत्तर प्रदेश राज्य की औद्योगिक गतिविधियों का केंद्र है जो 63 विभिन्न आकार के सेक्टरों में फैला है वर्तमान 2011 की जनगणना के अनुसार इस की जनसंख्या 64 2380 है यह राष्ट्रीय राजधानी दिल्ली से छभ–24 से जुड़ा है जो कि नगर के उत्तरी सीमा से होकर गुजरती है अन्य जिलों से भी यह सड़क मार्गों से जुड़ा है जैसे गाजियाबाद हापुड़ फरीदाबाद एवं वैशाली बिहार से होते हुए यह दिल्ली की रेल मेट्रो सेवा से भी जुड़ा है नोएडा का आधिकारिक नाम गौत्मबुद्ध नगर है नोएडा में सड़के पेड़ों से आच्छादित है और इसे भारत का सबसे ज्यादा हरियाली से युक्त नगर माना जाता है जिसका लगभग पचास फ़ीसदी हिस्सा हरियाली आच्छादित है जो कि भारत के किसी भी नगर के मुकाबले सबसे अधिक है नोएडा को एबीपी समाचार द्वारा वर्ष 2015 में उत्तर प्रदेश के सर्वश्रेष्ठ नगर का खिताब दिया गया है।

मोहाली नगर की स्थापना सुखना राव नदी के तट पर की गई है यह नदी नगर के पूर्व भाग में प्रवाहित होती है नगर की रूपरेखा का निर्माण विश्व की प्रसिद्ध संस्था वेलाफोकस एसोसिएट द्वारा तैयार किया गया है नगर में समानान्तर प्रमुख सड़क मार्गों का निर्माण किया गया है जो कि नगर के 49 क्षेत्रों को समानान्तर जोड़ते हैं नगर को नियोजित रूप देने के लिए नगर में प्रशासनिक भवन अस्पताल बस स्टैंड शॉपिंग मॉल शिक्षण संस्था रेलवे स्टेशन स्थापित किया गया है चण्डीगढ़ मोहाली के मिलन स्थल पर पंजाब क्रिकेट एसोसिएशन (च्ळ।) ने मोहाली क्रिकेट स्टेडियम का निर्माण भी करवाया है यह नियोजित नगर एक आत्मनिर्भर इकाई के रूप में जाना जाता है 2011 की जनगणना के अनुसार इस नगर की जनसंख्या 176152 थी।

गांधीनगर अहमदाबाद से 24 किमी उत्तर में स्थित गांधीनगर गुजरात राज्य की नई सुनियोजित राजधानी है जो साबरमती नदी के दाएं किनारे पर स्थित है नगर को 5500 हेक्टेयर भूमि पर बसाया गया है जो कि 30 सेक्टरों में बांटा गया है प्रत्येक सेक्टर की लम्बाई चौड़ाई 750 मीटर रखी गई है नगर में सड़कों का निर्माण ग्रिड प्रणाली के अनुसार किया गया है एवं नगर का विन्यास आयताकार रखा गया है सेक्टर में सेक्टर 10 में सचिवालय विधानसभा उच्च न्यायालय तथा अन्य कार्यालय स्थापित किए गए हैं नगर के मध्य में सार्वजनिक सांस्कृतिक एवं व्यापारिक सुविधाएं स्थापित की गई हैं नदी के सहारे सहारे पार्क व मनोरंजन क्षेत्र बनाए गए हैं इसे हरित नगर भी कहा जाता है चंडीगढ़

के बाद यह भारत का दूसरा ऐसा नगर है जिसे पूरी तरह से नियोजित करके बनाया गया है नगर की योजना नगर नियोजको के द्वारा किया गया जिसमें प्रकाश एम आप्टे और एच के मेवाड़ के द्वारा नगर की योजना तैयार कराया गया था। नगर राष्ट्रीय राजमार्ग संख्या आठ द्वारा जुड़ा हुआ है नगर का नजदीकी हवाई अड्डा सरदार वल्लभ भाई पटेल अन्तर्राष्ट्रीय हवाई अड्डा है एवं अहमदाबाद जंक्शन गांधीनगर का करीबी रेलवे स्टेशन है नगर में 2011 की जनगणना के अनुसार 284114 जनसंख्या निवास करती है3

शहरी विकास राज्य का विषय है लेकिन भारत सरकार समन्वय एवं निगरानी की भूमिका निभाती है और केन्द्र प्रायोजिक कार्यक्रमों के जरिए शहरी विकास में सहायता भी करती है भारत में शहरीकरण महत्वपूर्ण और बदली न जाने वाली प्रक्रिया बन गया है और इसे राष्टीय आर्थिक वृद्धि और गरीबी कम करने की दिशा में एक महत्वपूर्ण निर्धारक के रूप में देखा जा रहा है वर्तमान बढ़ोत्तरी की दर के अनुसार भारत में शहरी आबादी 2030 तथा 57.5 करोड़ पर पहुच जाने का अनुमान ही 2011 की जनगणना के अनुसार भारत में करीब 52 शहर एसे है जिसकी आबादी 10 लाख से अधिक है इस के साथ ही साथ पुराने नगरों के सुधार हेतु विस्तृत एवं व्यापक योजनाये भी बनाई गयी आज नगरीय नियोजन मे न केवल वर्तमान नगरों की समस्याओं के निराकरण और नगरीय पर्यावरण को अच्छा बनाने का प्रयास किया जा रहा है बल्कि मास्टर योजनाओ तथा स्मार्ट सिटी मिशन के द्वार भावी नगरीय वृद्धि से सम्भावित नगरीय आवश्यकताओं का ध्यान रखा जा रहा है तथा विभिन्न योजनाए क्रियान्वित की जा रही है5

राष्ट्रीय धरोहर शहर विकास और संवर्धन योजना 2015 में शुरू की गयी जो केन्द्रीय क्षेत्र के एक कार्यक्रम के रूप में 12 चुने हुए शहरों में चलाया जा रहा हैं अजमेर अमरावती अमृतसर बदामी द्वारका गया कांचीपुरम मथुरा पुरी वाराणसी वेलाकन्नी और वारंगल।5

जवाहर लाल नेहरु राष्ट्रीय शहरी नवीकरण मिशन मंत्रालय के प्रमुख कार्यक्रम के रूप 2005 में जवाहरलाल नेहरु शहरी नवीकरण मिशन शुरु किया गया।आवास और शहरी गरीबी उपशमन मंत्रालय द्वारा चलाए जा रहे हैं देश के 65 शहरों में चलाए जा रहे इस कार्यक्रम के अन्तर्गत संसाधनों के उच्चतर स्तर और प्रबंधन पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है 65 शहरों में से 35 शहर एसे हैं जिनकी आबादी 10 लाख से अधिक है और 30 शहर एसे है जो या तो राज्य के राजधानी है या फिर धरोहर और पर्यटन की दृष्टि से महत्वपूर्ण है शहरी ढांचा और शासन के अन्तर्गत कुल 55 मिशन शहर कंवर किए गये हैं जो वित्त पोषण के पात्र हैं।5

जीर्णोद्धार और शहरी रुपांतरण के लिए अटल मिशन कार्यक्रम 2015 में शुरू किया गया इस कार्यक्रम का मुख्य उद्देश 500 शहरों/ क़स्बो में बुनियादी शहरी ढांचे में सुधार लाना है।यह मिशन एक केंद्र प्रायोजित कार्यक्रम के रूप में चलाया जा रहा है।5

स्मार्ट सिटी मिशन 2015 में शुरू किया गया समूची शहरी पारिस्थितिकी प्रणाली को सम्पूर्ण और एकीकृत योजना के सिद्धान्तो पर विकसित करने के विचार पर आधारित है यह मिशन केन्द्र प्रायोजित कार्यक्रम के रुप में संचालित किया जा रहा है दिसम्बर 2016 तक इस मिशन के अंतर्गत कुल 60 शहरों को चुना जा चुका था जिनका कुल शहरी क्षेत्र 9,152 वर्ग किलोमीटर था स्मार्ट सिटी मिशन में लक्ष्य यह रहता है कि ऐसे शहरों का विकास किया जाये जो मूलभूत ढाँचा उपलब्ध कराते हो और अपने नागरिकों उत्कृष्ट एवं गुणवत्तापूर्ण जीवन प्रदान करते हो उनका वातावरण स्वच्छ और स्थिर हो तथा इसके लिए स्मार्ट स्योल्यूशन बनाए गये हों इसमें स्थायी और समावेशी विकास पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है और इसके पीछे समूचे क्षेत्र का आदर्श विकास करने पर ध्यान दिया जाता है ताकि वह अन्य महत्वाकांक्षी शहरों के लिए एक मिसाल बन सके।5

नगर नियोजन का कोई ना कोई उद्देश्य होता है रीमर ने आधुनिक नगर नियोजन के उद्देश्यों एवं उपयोगिताओं की चर्चा करते हुए लिखा है कि नगर नियोजन का प्रयोजन उपलब्ध साधनों के आधार पर नगर का इस प्रकार विकास करना है ताकि वह देखने में आकर्षक एवं सुन्दर लगे उसमें सफाई और प्रदूषण नियंत्रण की समुचित व्यवस्था हो ताकि उसमें रहने वाले स्वस्थ रह सकें तथा नगर में उपयोग करने वाली वस्तुओं का पर्याप्त और समुचित भण्डारण हो ताकि लोगों को इन्हें प्राप्त करने में किसी असुविधा का सामना न करना पड़े उचित यातायात व्यवस्था नगरीय अवस्थिपपन के जाल में रोशनी तथा प्रकाश क्रम किराए के मकानों की व्यवस्था मकान निर्माण के कार्यक्रमों की व्यवस्था मनोरंजन बाल उद्यान खेल के मैदान तथा स्वास्थ्य शिक्षा गंदी बस्तियों का निराकरण नगरीय क्षेत्रों एवं महानगरों का विकास गाड़ी तांगा रिक्शा एवं कार आदि के ठहरने की व्यवस्था शौचालय एवं स्नानागारो की व्यवस्था दुकानों तथा बाजारों का आयोजन बिजली पानी एवं गैस आदि आवश्यक वस्तुओं की सुविधा सुरक्षा समाज–कल्याण और नगरीय सुविधाओं में समृद्धि को नगर नियोजन का प्रमुख उद्देश्य बताया है साथ ही साथ इसमें नगरीय भूमि उपयोग कार्यात्मक क्षेत्र का दूसरे से सम्बन्ध उनमें परस्पर समन्वय एवं नगर में होने वाले भावी परिवर्तनों को भी ध्यान में रखना चाहिये। नगर नियोजन का उद्देश्य कभी एक पक्षीय और कभी बहुपक्षीय होता है इस दृष्टिकोण से नगर नियोजन को दो वर्गों में रखा जा सकता है प्रथम एक उद्देशीय योजना द्वितीय बहुउद्देशीय योजना। एक उद्देशीय योजना के अन्तर्गत एक प्रधान समस्या के निवारण के लिए कार्य योजना बनाई जाती है जैसे आवासीय योजना या औद्योगिक विकास योजना जबकि बहुउद्देशीय योजना के अन्तर्गत पूरे नगर के विकास के लिये सभी को ध्यान में रखकर योजना बनायी जाती है इसे व्यापक विकास योजना भी कहा जाता है ऐसी योजना के प्रारूप को मास्टर प्लान के माध्यम से क्रियान्वित किया जाता है जिसमें वर्तमान स्थिति और भविष्य की आवश्यकता का उल्लेख होता है भारत में नगरीय पुनर्निर्माण के लिये ऐसे मास्टर प्लान और उनके क्रियान्वयन के लिये विकास प्राधिकरणों की स्थापना सभी बड़े नगरों में की गई है नगर के बहुमुखी विकास के लिये इन प्राधिकरणों को व्यापक अधिकार दिये गये हैं ऐसे प्राधिकरण नगर को सुन्दर सुखी और समस्या रहित बनाये रखने के लिये हर सम्भव उपाय करने के लिये अधिकृत किये गये हैं।10

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि को भी ध्यान में रखना आवश्यक है यदि कोई स्थान धार्मिक है तो वहां नगर नियोजन करते समय उस क्षेत्र की धार्मिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखना पड़ेगा हम वहां के धार्मिक क्षेत्र को नजरअंदाज नहीं कर सकते जिस स्थान पर कोई शिक्षण संस्थान स्थापित हो जाता है वह स्थान धीरे–धीरे नगर का रुप धारण कर लेता है ऐसे स्थान भौगोलिक सुविधाओं से चाहे युक्त न हो लेकिन वहां शिक्षा संस्थान की स्थापना लोगों को अधिक से अधिक संख्या में बसने को मजबूर कर देती है वाराणसी,रुड़की,प्रयागराज ऐसा ही उदाहरण है नगरों और कस्बों पर बढ़ती हुई वृद्धि दबाव और इससे उत्पन्न होने वाली अनेक समस्याएं इस समय नगर योजनाकारो तथा प्रकाशको के सम्मुख अनेक नई चुनौतियां प्रस्तुत करती हैं नगरीय नियोजन राजनीतिक तथा सामाजिक सांस्कृतिक दृष्टि से स्वीकार्य होने के साथ–साथ पर्यावरणीय आर्थिक प्रौद्योगिकी राजकीय तथा आधारभूत संरचना के लिए व्यवहार्य होना चाहिए नगरीय भूमि पर जनसंख्या वृद्धि के बढ़ते हुए दबाव इसके प्रयोग तथा पुर्नप्रयोग सुविधाएं तथा सेवाएं और नगरीय क्षेत्रों में निम्न आय समूहो की बड़ी संख्या कुछ महत्पूर्ण घटक है जो नगरीय स्वास्थ्य संकट की समस्याओं को बढ़ाता है सरकार की परम्परागत भूमिका निष्पादन के अंदर विधि और व्यवस्था ठीक से बनाएं नहीं रखा जा सकता है इस भूमिका के लिए नगरीय समुदाय का सबसे अधिक महत्व है समूचे नगरीय समुदाय का नगर नियोजन में हिस्सा लेना चाहिए दूसरे शब्दों में नियोजन प्रणाली को इस समय यथासंभव अधिक से अधिक लोकतांत्रिक होना चाहिए नगरीय नियोजन में

बुनियादी दुर्बलता यह रही है कि इसने नगरीय अर्थव्यवस्था के अंदर अनौपचारिक क्षेत्र की वृद्धि की समस्याओं का पूर्वानुमान नहीं किया और अवस्थित संबंधी फोकस नगरीय तथा ग्रामीण बसावटों की आवश्यकताओ को पूरा करने में जनसंख्या वितरण के संबंध में सेक्टोरल कार्यक्रमों के निहितार्थ को स्पष्ट नहीं किया गया है विगत डेढ़ दशको से भारत में भूमंडलीकरण की प्रक्रिया तीव्र गति से क्रियाशील है विदेशी पूँजी का निवेश भारत में हो रहा है ऐसे में नगरी विकास एवं नियोजन को एक नया आयाम प्राप्त हुआ है अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की कंपनियां भारत में अपने कार्यालय खोल रही है ऐसे में भारत के विभिन्न शहरों में अत्यन्त उच्चस्तरीय एवं साज सज्जा से युक्त भवनों की माँग बढ़ रही है जिन स्थानों पर इनकी फैक्ट्रियां एवं अन्य उपक्रम स्थापित हो रहे हैं वे अत्याधुनिक तरीके से योजनानुसार बन रहे हैं जिनसे हर तरह की सुविधाओं का समावेश किया जा रहा है देश में नगरीकरण की तीव्र होती प्रक्रिया के चलते शहरों में भूमि एवं भवन निर्माण का कारोबार व्यापक स्तर पर फैल रहा है इसमें व्यक्तिगत रुप से एवं संगठित रूप से अनेक समूह क्रियाशील है अनेक बिल्डर व्यापक स्तर पर आवासीय भवनों का निर्माण कर रहे हैं वह योजनाबद्घ रुप से विकसित आवासीय भूखंडो का क्रय विक्रय कर रहे हैं इस प्रक्रिया में सरकारे भी पीछे नहीं है विभिन्न राज्यों में अलग अलग नामों से यथा हाउसिंग बोर्ड आवास विकास परिषद आदि स्वशासी संस्थान भी सम्मिलित हैं जो सरकार द्वारा संचालित है भवन निर्माण सहकारी समितियां भी इस क्षेत्र में सक्रिय है इन सबके लिये विभिन्न राज्य सरकारो द्वारा कानूनो मापदण्डो एवं दिशानिर्देशों को तय किया गया है संक्षेप में विगत तीन दशकों से शहरों में भवन निर्माण के क्षेत्र में व्यापक मांग बढ़ी है और विभिन्न सरकारी तथा गैर सरकारी संगठन तथा व्यक्ति इस क्षेत्र में सक्रिय है तथ्य यह है कि भारत में नगर नियोजन के प्रति सरकारे सचेत है नगरों के नियोजित विकास के लिए सैद्धान्तिक व्यवस्था कर दी गई है जिसका पालन करते हुए नगरीय विकास का प्रयास किया जा रहा है परन्तु इसका प्रभाव आंशिक है व्यवहारिक प्रक्रिया के चलते अनेक अवैध बस्तियाँ एवं इनका निर्माण नगरीय नियोजन को चुनौती देते प्रतीत हो रहे हैं यही कारण है कि नगरों में मनोहरी बस्तियाँ भी है और गंदगी से बजबजाते मुहल्ले भी नगर नियोजन का यही यथार्थ है।12

संदर्भ ग्रन्थ सूचीः–

1.बघेल,डॉव डीव एस नगरीय समाजशास्त्र (2007) मध्य–पदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी शिवम पब्लिकेशन भोपाल मध्य प्रदेश पृष्ठ संख्या 197,198 !

2.तिलारा, कुँवर सिंह नगरीय समाजशास्त्र प्रकाशन केन्द्र लखनऊ पृष्ठ संख्या 151,197 !

3.तिवारी, आरवसीव अधिवास भूगोल (1997) प्रयाग पुस्तक भवन इलाहाबाद पृष्ठ संख्या 326,329,334 !

4.तिवारी, श्रीमती शारदा नगरीय समाजशास्त्र (2007) अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस दरियागंज नई दिल्ली पृष्ठ संख्या 167 !

5.विंग,न्यू मीडिया भारत 2018 प्रकाश विभाग सूचना और प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार पृष्ठ संख्या 326,327,328 !

6.कौशिक, एसवडीव मानव भूगोल के सरल सिद्धान्त (2011) रस्तोगी पब्लिकेशन्स पृष्ठ संख्या 351,352 !

7.पाटिल, अशोक डीव ग्रामीण एवं नगरीय समाजशास्त्र (2013) मध्य–पदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी भोपाल पृष्ठ संख्या 41,42 !

8.शर्मा,वीरेन्द्र प्रकाश ग्रामीण एवं नगरीय समाजशास्त्र (2005) पंचशील प्रकाशन जयपुर पृष्ठ संख्या 165 !

9.जैन,शशी केव नगरीय समाजशास्त्र (2012) रिसर्च पब्लिकेशन्स पृष्ठ संख्या 147,148 !

10.राव,बीवपीव तथा शर्मा नन्देश्वर नगरीय भूगोल (2008) वसुन्धरा प्रकाशन गोरखपुर पृष्ठ संख्या 199,201

11.सिंह,वीवएनव तथा सिंह जनमेजय नगरीय समाजशास्त्र (2015) रावत पब्लिकेशन जयपुर पृष्ठ संख्या 186,187 !

12-Singh]R-L-Banaras%A Study in Urban Geography 323,324,225,320,310 !

The Opinion V.10, N. 20 J-D 2021 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal

समकालीन लेखन में स्त्री विमर्श

डॉ.राम अवध सिंह यादव
स्नातकोत्तर शिक्षक–हिन्दी
केन्द्रीय विद्यालय, काशी हिन्दू वि०वि०वाराणसी ,उ ०प्र ०

आज का साहित्यिक विमर्श स्त्री विमर्श के बिना प्रायःअधूरा जान पड़ता है।समकालीन लेखन का सीधा संबंध वर्तमान लेखन के साथ जुड़ा हुआ है ,जिसमें मुक्ति का मार्ग खोजती हुई वर्तमान स्त्री के जीवन के अनेक पहलुओं को परत दर परत बड़ी ताकत के साथ उजागर किया गया है। चाहे वह स्त्री के यौन सम्बन्धों को लेकर देह सुचिता का प्रश्न हो या फिर अपने व्यक्तित्व की स्वतंत्र सत्ता को स्थापित करने की छटपटाहट हो। पुरुष के हवस का शिकार होती हुई आधुनिक स्त्री का प्रतिक्रियावादी आक्रोश हो या फिर विवाहेतर या विवाह पूर्व परपुरुष से दैहिक संबंध स्थापित करने की बात हो या फिर दंभी या स्वेच्छाचारी पति से संबंध–विच्छेद करने का प्रश्न हो आज की स्त्री बिना किसी अपराध बोध के अपने आप को अभिव्यक्त कर रही है। समकालीन लेखन स्त्री के इन्हीं संदर्भों को वाणी दे रहा है।

स्त्री विमर्श का विषय बहस का विषय उतना नहीं है ,जितना जागृति का। लेखन या तो अनुमान के आधार पर होता है या अनुभव के आधार पर। आज के स्त्री विमर्श को विज्ञापन, प्रचार और फैशन में तब्दील कर दिया गया है । स्त्री का यह शोषण अदृश्य परंतु अत्यंत भयानक है ,क्योंकि इसमें शोषित की इच्छा और ललक भी शामिल हो गई है । आज के दौर की महिला ,पुरुष और महिला दोनों का दायित्व बखूबी निभा रही है, लेकिन आधुनिकता और परंपराओं के बीच पिस रही है । स्त्री और पुरुष अपनी नई ऐतिहासिक भूमिकाओं के साथ एक –दूसरे के सामने खड़े हैं।

पुरुष सत्तात्मक समाज की आचार संहिता के अनुसार स्त्री के शरीर को यदि उसके पति के सिवाय कोई अन्य व्यक्ति स्पर्श कर ले तो वह अपवित्र हो जाती है । इस देह की पवित्रता के साथ ही जुड़ा हुआ प्रश्न यौन शुचिता का है। समाज में यदि देह व्यापार जीवित है तो मात्र इसलिए कि पुरुषों में स्त्री देह कों खरीदने की प्रवृत्ति आज भी मौजूद है। जो औरतें अतीत में गणिकाऐ देवदासियां अथवा नगरबधुएँ कहलाती थी, वर्तमान में कालगर्ल ,बार डांसर और सेक्स वर्कर कहलाती हैं। स्त्रियों से जुड़े इस अपराध को स्त्रियों की सहज उपलब्धता पर मढ़कर कोई भी समाज दोषमुक्त नहीं हो सकता।

मानव मूल्यों और अस्तित्व की खोज आधुनिक संकट से उत्पन्न आशंका और भय, अपने ही से उबकर अजनबीपन, भीड़ में अकेलेपन की भावना, व्यर्थता–बोध तथा नई कल्पना और नई चेतना ने नारी मन को झकझोरा है। नारी जब रोजी–रोटी की तलाश में अथवा आर्थिक स्वतंत्रता के लिए घर से बाहर आयी तो उसके जीवन स्थितियों में बहुत अंतर आ गया । घर से बाहर आकर उसने एक व्यक्ति स्वातंत्र्य का अनुभव किया और अब पुरुष ही जिस विवाहेतर प्रेम संबंध को अपना अधिकार समझता था वह स्त्री के पहुंच में भी आ गया । नैतिकता के नए बोध ने यौन शुचिता की धारणा को अर्जित कर काम को मात्र दैहिक–जैविक आवश्यकता के रूप में स्वीकारा है । आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्रता प्राप्त नारी ने इन संबंधों की चूलों को बुरी तरह हिला दिया है।

भाषा पुरुष प्रधान है । सारी गालियां मर्दवादी भाषा में है। स्त्रियों को बहुत याद करते हैं गालियों में । एक दूसरे की मां–बहनों को को अपमानित करने से उन्हें क्या मिलता है।महत्व देना बहुत आसान है,

बराबरी देना बहुत कठिन है । स्त्री पुरुष विरोधी नहीं बल्कि पूरक है। अतः आवश्यकता है कि नारी बनाम पुरुष नहीं बल्कि स्त्री एवं पुरुष की भाषा बोली जाए ।

स्त्री विमर्श का सबसे कठिन हिस्सा यह है कि आज तक स्त्रियों की अपनी कोई विशेष भाषा नहीं निर्मित हुई ।उसने आज तक जो भी सोचा समझा या बोला है वह उधार की भाषा है। उसे बार–बार उन्हीं मिथकों बिम्बों एवं शब्दावली से गुजरना पड़ता है। चाहे वह गाली हो या आशीर्वाद ,पुरुष सत्ता को ही सुदृढ़ करने वाले हैं ।उसकी बुदबुदाहट ,बड़बड़ाहट से भी भविष्य की परिनिष्ठित एवं परिष्कृत भाषा का निर्माण होगा ।राजेश जोशी के शब्दों में कहें तो श्बुदबुदाहट ही किसी व्यक्ति का सबसे विश्वसनीय दस्तावेज होता है।श

सामाजिक परिदृश्य में विज्ञापन फिल्म बनाने वाले व्यवसायी भी स्त्रियों को ही अपनी वस्तुओं को लोकप्रिय बनाने का साधन मानते हैं ।ऐसे सारे आयोजनों के पीछे मुख्य उद्देश्य दर्शकों का ओछा मनोरंजन करके उनकी कामुक वृत्तियों को उकसाना होता है ।आधुनिकता की दौड़ और धन कमाने की उत्कट अभिलाषा से प्रेरित हमारी महिलाओं को सोचना चाहिए कि उनके इस तरह के क्रियाकलापों का उनकी स्वयं की संतान एवं असंख्य बच्चों के कोमल मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ेगा। अतः संचार माध्यमों को महिलाओं के सम्मान एवं आदर पर आधारित छवि प्रदर्शित करने हेतु प्रोत्साहित किया जाना चाहिए।

आज महिला लेखन का सरोकार व्यक्तिगत न होकर वैश्विक हो गया है। आज स्त्री की सारी शिकायत पिता ,भाई या पुत्र से नहीं बल्कि पति से है। विवाह के बाद लड़की का दूसरा जन्म होता है।उसे बिल्कुल दूसरी तरह से खुद को ढालना होता है ,नहीं ढाल पाती तो विवाह व्यवस्था बिखरने लगती है। आज की सबसे विकट समस्या है दांपत्य संबंधों की जटिलता। पुरुषों को स्त्री का अति आधुनिक होना बर्दाश्त नहीं है। स्त्री देह पर स्त्री का अधिकार हो यह बात तो ठीक है ,किंतु उसका गलत इस्तेमाल घातक है।

स्त्री व्यक्तित्व को जिस एकमात्र जगह पर सबसे अधिक कुचला तोड़ा और समाप्त किया जाता है वह है ष्सेक्सष् उसका शरीर। स्त्री को मर्यादा या नियंत्रण में रखने की जितनी भी तरकीबें हैं वे सब सेक्स को लेकर ही है आज भी स्त्री को सेक्स सिंबल समझा जाता है उसे बेचा जाता है अधनंगा करके।

वर्तमान युग में अब स्त्री पुरुष की सेक्सुअल स्लैब या पैसिव पार्टनर बनकर रहने के लिए कदापि तैयार नहीं है । वह जीवन साथी बन कर बराबरी का दर्जा चाहती है।लाख सामाजिक पारिवारिक दबाव हो पत्नी सहज क्षमाशील होकर वर्तमान युग में पति की हर खता माफ करने को अब तैयार नहीं है। वह पति को अपनी जगह बैठाकर सवाल करती है । स्त्री पुरुष समानता को प्रश्रय देने वाली नारी मुक्ति भावना धीरे –धीरे स्त्री पुरुष प्रतिद्वंदिता में बदलती जा रही है। नारी मुक्ति के नाम पर स्त्रियां घर को कैद खाने तथा बच्चों को बंधन मानने लगी हैं ,पुरुषों को अपना दुश्मन व मातृत्व को बोझ समझने लगी हैं। यदि पुरुष ने नारी देह–मन के प्रति अपनी हिंसक रवैया पर रोक नहीं लगाई तो वह दिन दूर नहीं जब स्त्री संतानोत्पत्ति से भी इंकार कर दे।

शिक्षा मुक्ति और स्वाधीनता का प्रवेश द्वार है ,लेकिन शिक्षित होने के बाद भी आज की स्त्री ही स्त्री की दुश्मन है। यदि ऐसा न होता तो कन्या भ्रूण–हत्या जैसे जघन्य अपराध न होते ,लिंगानुपात की समस्या भी नहीं होती । आज की स्त्री शरमाना , झिझकना छोड़ दी है । विवाह से पूर्व ही पुरुष मित्रों के साथ रिलेशन में रहती है। महिला इतना आगे बढ़ चुकी है कि पुत्र पहले और विवाह बाद में हो रहे हैं । इसके बावजूद भी स्त्री को अपनी वफादारी का लाइसेंस करवा चौथ के रूप में हर साल रिन्यू करना पड़ता है। पूरा स्त्री विमर्श इस ओर संकेत करता है कि स्त्रियों में बौद्धिकता आनी चाहिए, चिंतन आना चाहिए।

स्त्री चिंतनशील हो गई तो उसे ठगने की क्षमता किसी में नहीं होगी। कबीर के अनुसार स्त्री में वह ताकत है जो भुजंग को भी अंधा कर सकती है।

आज समाज में एक दूरभिसंधि दिखाई दे रही है –स्वतंत्रता के नाम पर केवल देह की स्वतंत्रता । एक पति से क्यों बंधे रहे आज की स्त्री? विदेशों की तरह अनेक अनेकों पति बदलते रहिए ,पर अंत में क्या मिलेगा ? मोहन राकेश ने आधे –अधूरे में लिख दिया है कि कोई भी आदमी पूर्ण नहीं है। इज्जत का झंडा हमेशा लड़की /औरत की पीठ पर गड़ा रहता है, बताए गए नियमों से लड़की के जरा सा इधर–उधर होने से इज्जत चली जाती है । मेरे समझ में नहीं आता कि इज्जत इतनी कच्ची क्यों होती है? आदमी कुछ भी करें नहीं जाती है । इस प्रकार तो इज्जत का ठीकरा स्त्री पर समाज द्वारा थोपा जा रहा है। मैत्रेई पुष्पा का कहना है कि 'जिससे प्रेम करो उससे शादी मत करो। नहीं तो तुम एक अच्छा प्रेमी खो दोगी ।' देह की स्वतंत्रता का नारा एक नई तरह की कामुकता की तरफ जाता है । वह इस्त्री के पक्ष में नहीं है । लेकिन स्त्री एक व्यक्तित्व है और स्वाधीनता तमाम क्षेत्रों में उसके अबाध आने –जाने की बात करती है । स्त्री स्वतंत्रता उसका अधिकार है ।

समकालीन महिला लेखन में स्त्री संबंधी जिन प्रश्नों को उठाया गया है, उनमें स्त्रियों की 'आर्थिक स्वतंत्रता' महत्वपूर्ण है। नारी विमर्श का स्वर मुख्यतःनारियों की आर्थिक आत्मनिर्भरता की मांग करता है । "पैसे कमाने से स्त्री निर्णय लेना सिखाती है और निर्णय की क्षमता उसके संघर्ष को मजबूत करती है।"[1] सिमोन द बुआ ने पहली बार इस बात की घोषणा की कि ''आर्थिक स्वतंत्रता के अभाव में स्त्री की स्वतंत्रता सिर्फ अमूर्त और सैद्धांतिक रह जाती है। "[2] आर्थिक आत्मनिर्भरता स्त्री स्वातंत्र्य का दरवाजा है। महिलाएं जब पुरुषों के विरोध में कुछ लिखती हैं तो उनमें दो तरह के उत्पीड़न का बहुत जिक्र होता है । आर्थिक रूप से निर्बल स्त्री और सेक्स के छलावे से पीड़ित स्त्री । बेटियां हर बात में शामिल रही है ,दुख में, बीमारी में ,सिर्फ शामिल नहीं हो पाती तो जमीन के टुकड़ों और घर के आंगन में । इस प्रकार की विचारधारा कानून के बावजूद भी समाज में चली आ रही है।

"औरत ही जन्म देती है पुरुष को और स्त्री को भी। एक ही कोख में दुनियां की दो रचनाएं रहती हैं ,जिससे सृष्टि चलती है। जब प्रकृति को नव सृजन के लिए औरत श्रेष्ठ लगती है तो पुरुष को उसकी रचना ,स्त्री कैसे दोयम लग सकती है?"[3] किंतु युग कोई भी रहा हो बेटी –बेटे में भेदभाव सदा प्रवर्तमान रहा है और आज भी अपने बदले हुए स्वरूप में प्रवर्तित है। पुरानी व्यवस्था अब भी कायम है नए बदलाव के साथ। लड़के और लड़की में भेद परिवार में पुत्री और पुत्र का अबोला द्वंद्व जारी है। पूंजी पर पुत्र का ही उत्तराधिकार स्त्री मुक्ति के मार्ग में सबसे बड़ी अभेद्य काली दीवार है, जिसे तोड़ कर ही स्त्री के लिए न्याय ,समानता ,समानाधिकार ,स्वत्वाधिकार संभव हो सकेंगे।

स्त्री और पुरुष मानवीय समाज के एक ही शरीर के हिस्से हैं और साथ ही वे अविभाज्य एकता से जुड़े हैं अतः उनमें से कोई भी पीड़ा में रहेगा तो दूसरा भी प्रभावित होगा।स्त्री के ऊपर कब, कहां ,कौन

,कैसे हमला बोल देगा कुछ तय नहीं, लेकिन आज की स्त्री को यह भी सोचना होगा कि संरक्षण की चाह और बराबरी की चाह दोनों साथ–साथ नहीं चल सकती।

जो अपने को आधुनिक कह रहे हैं उनकी आधुनिकता कितनी बैलेंस्ड है यह चिंतन की बात है। हमारे समय ने , मीडिया ने ,बहुत सी चीजें दी है । हम बराबर पा भी रहे हैं, स्त्री विमर्श इन सबसे अलग कोई चीज नहीं है । स्त्री विमर्श का मतलब यह नहीं है कि पुरुष बहिष्कार ,पुरुष से टकराव या लूकाठी लेकर घर फूंक दिया जाए । स्त्री विमर्श का मतलब है सह अस्तित्व की भावना। पुरुष का विरोध करते हुए पुरुष की तरह निरंकुश और स्वच्छंद हो जाना नारी मुक्ति नहीं है । स्तरीय साहित्य लेखन की आवश्यकता आज की जरूरत है । सामाजिक सोच में बदलाव लाए बिना नारी मुक्ति संभव नहीं है । इस तरह स्त्री लेखन में परंपरा के विरुद्ध विरोध है तो आधुनिकता के प्रति सतर्कता । महिला लेखन में अपार संभावनाएं हैं । सर्वत्र सामाजिक बदलाव आ रहा है । अनुभव और अभिव्यक्ति के द्वारा स्त्री मुक्ति का नया अध्याय तैयार हो सकेगा ।

संदर्भ –ग्रंथ सूची–

1–डार से बिछड़ी हुई –कृष्णा सोबती पृष्ठ –17 ,राजकमल पेपर ,बैक्स संस्करण –2007

2–सीमोन द बुआ –सेकंड सेक्स –हिंदी अनुवाद ,पृष्ठ संख्या –192

3–नारी रूएक सफर संपादक –दिनेश नंदिनी डालमिया, संतोष गोयल पृष्ठ –213 ,ज्ञान भारती ,संस्करण–2008

औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण

योगेन्द्र प्रसाद यादव
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी
Email- ypyvns@gmail.com

सारांश –
प्रस्तुत शोध आलेख में औद्योगिक विकास एवं पर्यावरण के बीच सम्बन्ध एवं प्रभावों को रेखांकित किया गया है। औद्योगिक क्रांति के समय यह आशा एवं विश्वास किया गया कि इसके माध्यम से सम्पूर्ण दुनिया में विकास, रोजगार, असमानता, गरीब को दूर किया जायेगा लेकिन हुआ, इसके विपरीत आज अनियमितढंग से औद्योगिक विकास के फलस्वरूप मानव, जल, जंगलो आदि पर संकट के बादल मंडरा रहे है।

प्रमुख शब्दावली– पर्यावरण, विकास, विनाश, औद्योगिकी, प्रकृति, समाज, मानव, स्वास्थ्य, तापमान क्षति आदि।

औद्योगिकरण की अवधारणा औद्योगिक क्रांति से जुड़ा हुआ है। इंग्लैंड में सन् 1960–70 की काल खंडों से औद्योगिक विकास की एक नई शुरूआत हुई। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप एक नई दुनिया एवं एक नए परिवेश में मानव समाज का प्रवेश हुआ तथा आशा व विश्वास किया गया कि इस सृष्टि पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों की खोज कर मानव जीवन के विकास हेतु इसका उपयोग किया जाएगा तथा इस सृष्टि असमानता व गरीबी को दूर किया जाएगा।[1] लेकिन अभी हम यह विश्वास कर ही रही थे कि द्वितीय विश्व युद्ध के रूप में पूरी दुनिया ने औद्योगिक विकास के भयंकर स्वरूप अहिंसा बर्बरता विनाश के मंजर को देखा जिससे मानवतावादी दृष्टिकोण लहूलुहान हो गया।[2] वर्तमान समय में औद्यागिक विकास की प्रक्रिया तीव्र एवं व्यापक है। इसमें न केवल मानव बल्कि पर्यावरणीय संकट पर भी बादल मंडराने लगा है। आज औद्योगिक विकास के फलस्वरूप हजारों हेक्टेयर कृषि योग्य भूमिया एवं हरे–भरे जंगल को विकास के नाम पर मटियामेट एवं नष्ट किया जा रहा है। मानव का यह राक्षसी पंजो ने कृषि भूमि एवं वन को उजाड़ रहा है उसे यह ज्ञात नहीं है कि उसका यह कदम उसे भविष्य में कितना आत्मघाती होगा। जब इस सृष्टि पर ऑक्सीजन नहीं होगा तो मानव के श्वासों को सुकून कहां से प्राप्त होगा। आज कारखानों से निकले हुए केवल सल्फर डाइऑक्साइड तथा कार्बन मोनोऑक्साइड के फलस्वरूप ही वायुमंडल की स्थिति चिंताजनक हो गई है।[3] वही[1] औद्योगिक क्रांति ने इस दुनिया में दो सबसे बड़े झूठो का प्रचार किया पहला यह की प्रकृति केवल व्यापार की वस्तु है। तथा दूसरा यह समाज केवल मनुष्यों का है। आज वैज्ञानिक प्रगति ने जंगल, वृक्षों, जीव–जंतुओं पर दिन प्रतिदिन नए–नए अनुसंधान कार्य करके मानव जाति के लिए अनेक लाभकारी दवाइयों का निर्माण एवं खोज कर रहे हैं। यह समाज केवल मनुष्यों का है यह भी कहना गलत है क्योंकि इस सृष्टि पर सभी जीव जंतु का एक अपना अलग पहचान व मूल्य है लेकिन आज अपने स्वार्थो के कारण प्रत्येक वस्तु को अपने अधीन मानकर उसका उपभोग अधिकार समझता है। आज Nature is commodity की विचारधारा तीव्र गति से समाज में बढ़ रही है। जिसके फलस्वरूप आज प्रकृति व्यापार की एक वस्तु मानी जा रही है जैसे देखा जाए तो गंगा एक पवित्र नदी है। लेकिन आज वह औद्योगिक विकास के फलस्वरूप पवन–पावन पवित्र गंगा नदी नहीं रह जाती है बल्कि उससे अब कितने

मेगावाट बिजली पैदा हो सकती हैं? उसका कितना व्यापार मूल्य होगा? इस विचारधारा के रूप में उसे देखा जा रहा है। जिसके कारण पर्यावरण संतुलन बिगड़ रहा है।[4]

हाल में ही प्रकाशित नई दिल्ली के एक रिपोर्ट के अनुसार केवल वायु प्रदूषण से ही सन् 2016 में लगभग 500000 लोगों की मृत्यु असमय काल में हुई। आज इस पर्यावरण में कहर सबसे ज्यादा कोयले पर आधारित औद्योगिक विकास का है। लेसेंट काउटडाउन के सन् के एक रिपोर्ट में आशंका व्यक्त किया गया कि यदि हम कोयले पर आधारित औद्योगिक इकाइयों को बंद नहीं करते हैं तो आने वाले समय में पर्यावरणीय हालत और भी चिंताजनक होंगे।[5] भारत में केवल ग्लोबल वार्मिग के फलस्वरूप ही सन् 2100 तक जीडीपी में लगभग 10% तक कमी आ सकती है। एक अनुमान है कि पिछले एक दशक में भारत में केवल बाढ़ से ही 3 बिलियन डालर की आर्थिक क्षति हुई है। सन् 2020 में आने वाला अम्फान तूफान ने ही लगभग 13 मिलियन व्यक्तियों को प्रभावित किया था तथा पश्चिम बंगाल से टकराने के बाद इस तूफान से लगभग 13 बिलियन डालर की आर्थिक क्षति हुई।[6]

''माता भूमिः पुत्रोऽहम पृथ्वीया''

धरती हमारी मां है तथा हम इस धरती के पुत्र। प्राचीन काल से ही भारत में पृथ्वी पर उपस्थित सभी जीव जंतु एवं वनस्पति के महत्व के समझाया गया। तथा बहुत से वृक्षों की पूजा आराधना तक की गई जिसे काटना पाप माना गया है।[7] औद्योगिक विकास में पर्यावरणीय जिन नीतियों को सम्मिलित नहीं किया गया है वह अधिकतर मानव स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डालती है। एक अनुमान है कि दुनिया में केवल 200 करोड़ लोग दूषित भोजन एवं जल के अनेक रोगों से ग्रसित है। तथा दुनिया में हर साल लगभग 3000000 से अधिक बच्चों की मौत केवल जलजन्य रोगों के कारण होती है। एक अनुमान है कि भारत में 5 वर्ष से कम आयु का हर पांचवां बच्चा दस्त के कारण मरता है। औद्योगिक कारखानों का बिना शोधित किया गया पानी जब किसी जलाशयों में पहुँचता है तो वह मानव समुदाय में आंत आदि से सम्बन्धित अनेक रोगों का कारण बनता है। यह कभी–कभी बड़ी महाबीमारियों का सृजन भी करता है।[8] उत्तर प्रदेश के सोनभद्र जिले के चिल्का दाद गाँव के लोगों का कहना है कि कोयले की खान के फलस्वरूप यहाँ का पर्यावरण प्रदूषित हो रहा है । जिसके कारण इस क्षेत्र में मृत–प्रसव, बाँझपन, रक्त सम्बन्धित अनेक बीमारियाँ लोगों में होना एक सामान्य बात हो गई है।[9] स्वस्थ आबादी के लिए एक स्वस्थ पर्यावरण होना अति आवश्यक है। लेकिन सर्वप्रथम इस ओर ध्यान अमेरिकन लेखिफा राशेल कार्सन ने सन् 1962 में अपनी पुस्तक साइलेंट स्प्रिंग के माध्यम से लोगों को इस समस्या से अवगत कराया और कहाँ कि जिस तेजी से औद्योगिक विकास हो रहा है उसकी कीमत मनुष्य को आने वाले कुछ सालों में चुकाने होंगे यह कीमत मनुष्य की बर्बादी के रूप में होगा।[10]

पर्यावरण सुरक्षा एवं संरक्षण का उल्लेख भारतीय संविधान के अनुच्छेद 52–क में लिखा गया है कि प्रत्येक भारतीय नागरिक का मूलभूत उत्तरदायित्व है कि वह नदियों, वन, झील तथा वन्य जीव सहित पर्यावरण की सुरक्षा करे एवं अन्य प्राणी मात्र के लिए दया की भावना रखें। 48–क अनुच्छेद के तहत राज्य नीति निर्देशक तत्व के अनुसार राज्य पर्यावरण संरक्षण वन्य तथा अन्य जीव जन्तुओं की रक्षा करेगा।[11] देखा जाए तो पिछले 500 सालों में पृथ्वी के औसत तापमान में लगभग 1 डिग्री सेंटीग्रेड की वृद्धि हुई है। 21वीं सदी में यह तापमान 1.5 से 5.8 डिग्री तक बढ़ने की सम्भावना जताई जा रही है। भारतीय उपमहाद्वीप का अनुमान है कि सन् 2080 तक लगभग 3.5 से 5.5 तक पृथ्वी का औसत तापमान बढ़ सकता है। जिसका सीधा असर जलवायु के दशाओं पर पड़ेगा। जलवायु परिवर्तन के फलस्वरूप अनेक महामारी तथा बीमारियों में वृद्धि होगी। जिसमे अस्थमा, फ्लू, मलेरिया, कालरा, डेंगू, रक्तचाप, स्वसन तथा प्रदूषित खान–पान से कुपोषण जैसी अनेक बीमारियों का समाज में तेजी से फैलाव होगा। जलवायु परिवर्तन से सिर्फ मनुष्य ही

केवल प्रभावित नहीं होंगे बल्कि इस पृथ्वी पर उपस्थित समस्त जीव–जन्तुओं पेड़–पौधे भी प्रभावित होंगे। तथा करोना जैसी अनेक सवंमित बीमारियों का पशु–पक्षियों से मनुष्यों में फैलाव होगा।[12] ब्राजील के जंगलों को पृथ्वी का फेफड़ा कहा जाता है क्योंकि यहाँ से दुनिया को 20% ऑक्सीजन प्राप्त होता है। सूरीनाम जैसा देश कार्बन सिंग के साथ कार्बन नेट के लक्ष्य शून्य को भी हासिल कर चुका है। दुनिया में सर्वाधिक कार्बन उत्सर्जन में अमेरिका 27% , चीन 14% भारत 7% तक उत्सर्जन करते हैं। इन देशों को भी इस देश से सीख लेनी चाहिए कि कार्बन उत्सर्जन को कैसे कम करके हम पर्यावरण को स्वच्छ बना सकते हैं।[13]

पर्यावरण संरक्षण नीतियाँः– भारत देश में अनेक प्रकार की सहकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाएँ पर्यावरण संरक्षण हेतु महत्वपूर्ण कार्य कर रही है जो निम्नांकित है–

बॉम्बे नेचुरल हिस्ट्री सोसायटीः–इस संस्था की स्थापना सन् 1883 में मुंबई मे किया गया थाशुरूआत में इस संस्था में 5 से लेकर 6 व्यक्ति केवल कार्य करते थे लेकिन आज इसका क्षेत्र बहुत व्यापक है इसका मुख्य कार्य वन्य जीव संरक्षण एवं नीति निर्माण अनुसंधान आदि से है। हार्बिल नामक सुविख्यात पत्रिका भी इस संस्था द्वारा प्रकाशित की जाती है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर प्रकाशित होने वाली जर्नल ऑन नेचुरल हिस्ट्री पत्रिका भी इसी संस्था की है।

वर्ल्ड वाइड फंड फॉर नेचर इंडिया (world wide fund for nature-India) वर्तमान समय में भारत में इसकी अनेक संस्थाएं पर्यावरणीय शिक्षा जागरूकता विकास कार्यों से सम्बन्धित कार्य संचालित करती हैं।

विज्ञान एवं पर्यावरण केन्द्रः–इस संस्था का कार्य पर्यावरणीय दशाओं से सम्बन्धि समय–समय पर अनेक कार्यशाला, संगोष्ठी आदि के कार्यक्रमों का आयोजन करना है। सुप्रसिद्ध डाउन टू अर्थ का प्रकाशन भी इसी संस्था द्वारा किया जाता है।

बॉटनिकल सर्वे इंडिया (The Botanical Survey of India):–इस संस्थान का मुख्य कार्य समय–समय पर विभिन्न पेड़–पौधों के ऊपर अनुसंधान कार्य का आयोजन करना होता है। **जूलॉजिकल सर्वे ऑफ इंडिया (zoological survey of India)**:– वन्य जगत की सुव्यवस्थित ढंग से अध्ययन करना इस संस्थान का महत्वपूर्ण कार्य है।[14]

वन्य जीव संरक्षण अधिनियम (1972)
जल प्रदूषण निवारण एवं नियंत्रण अधिनियम (1974)
पर्यावरण संरक्षण अधिनियम (1986)
वायु प्रदूषण अधिनियम (1981)
जैव विविधता कानून (2001)[15]

निष्कर्षः– आज का युग विज्ञान का युग है, इसमें कोई संदेह नहीं है। लेकिन विज्ञान ने एक तरफ मानव के विकास के अनेक दरवाजे खोले हैं, तो वही दूसरी तरफ अनेक दरवाजों पर ताला भी लगाया है आज कारखानों तथा वाहनों से निकलते हुए धुऐं के गुब्बारों ने पूरी दुनिया के वातावरण को प्रदूषित भी किया है। आज मनुष्य का श्वास घुट रहा है। वर्तमान समय में सबसे गम्भीर समस्याओं में से एक पर्यावरण प्रदूषण की भी समस्या है। आज पर्यावरण की समस्या किसी एक व्यक्ति गाँव नगर महानगर राज्य या देश तक सीमित नहीं है बल्कि इसका प्रभाव समूची दुनिया पर दिखलाई दे रहा है। पर्यावरण समस्याओं का समाधान करने हेतु पूरी दुनिया के देश प्रयासरत है लेकिन औद्योगिक विकास नगरीकरण वनों का विनाश के फलस्वरूप यह समस्या विकराल रूप धारण करती जा रही है। संयुक्त राज्य के अनेक संस्थाओं द्वारा डब्ल्यूएचओ एवं विश्व पर्यावरण संस्थान व अंतर्राष्ट्रीय वन संरक्षण संस्थान आदि के द्वारा इस समस्या का समाधान खोजने का प्रयास निरंतर जारी है। लेकिन सफलता तभी मिल सकती है जब अधिकाधिक संख्या

में जनसहयोग का योगदान मिलता रहे आज औद्योगिक विकास के फलस्वरूप दुनिया में अनेकों नए–नए बीमारियों का सृजन हो रहा है। तो इस स्थिति में यह आवश्यक है कि हम औद्योगिक विकास के साथ–साथ पर्यावरण संरक्षण पर भी ध्यान रखें तभी एक स्वच्छ पर्यावरण एवं स्वस्थ समाज की संकल्पना विकसित हो सकती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. झा, विश्वनाथ (2017) औद्योगिक समाजशास्त्र, प्रकाशक रावत पब्लिकेशंस, जवाहर नगर जयपुर 302004 पृष्ठ संख्या 228
2. पाण्डेय, रवि प्रकाश (2011) समाजशास्त्रीय सिद्धांतः अधिगम एवं परिप्रेक्ष्य, प्रकाशक द्वारिका प्रसाद अग्रवाल, शेखर प्रकाशन इलाहाबाद पृष्ठ संख्या 163
3. वही[9] पृष्ठ संख्या 250,251
4. बहुगुणा, सुंदरलाल (2013) पर्यावरण और विकास, प्रकाशक सर्व सेवा संघ प्रकाशन राजघाट वाराणसी 221002 पृष्ठ संख्या 05,06
5. उजाला,अमर संस्था वाराणसी दिनांकक 15 नवंबर सन् 2019 पृष्ठ संख्या 16
6. पत्रिका,पर्यावरण विकास, अंक 05–06 मई–जून सन् 2021 पृष्ठ संख्या 23
7. सक्सेना, हरिमोहन (2014) पर्यावरण प्रदूषण एवं संघृत विकास, प्रकाशक राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी, प्लांट नं0 1, झालाना संस्थानिक क्षेत्र जयपुर 302004 पृष्ठ संख्या 265
8. भरूचा, इराक (2006) पर्यावरण अध्ययन प्रकाशन, ओरियंट लोंग्मैन प्राइवेट लिमिटेड 1/24 आसफ अली रोड, नई दिल्ली 110002 पृष्ठ संख्या 219,220
9. पत्रिका, डाउन टू अर्थ रंग–रंग में पारा अंक अक्टूबर 2012 पृष्ठ संख्या 29
10. पत्रिका, आविष्कार जून 2017 प्रकाशन नेशनल रिसर्च डेवलपमेन्ट कारपोरेशन 20–27, जमरूदपुर सामुदायिक केन्द्र कैलाश कॉलोनी एक्सटेंशन नई दिल्ली 110048 पृष्ठ संख्या 06
11. विधायक शोध पत्रिका–पर्यावरण विशेषांक अंक 19, जुलाई–सितंबर 2020, प्रकाशक प्रमुख सचिव छत्तीसगढ़ विधानसभा सचिवालय पृष्ठ संख्या 08
12. वही[99]
13. पत्रिका, पर्यावरण विकास जनवरी 2022 पर्यावरण संरक्षण अनुसंधान एवं विकास केन्द्र, इंदौर मध्य प्रदेश पृष्ठ संख्या 09
14. वही[८] पृष्ठ संख्या 09–12
15. सिंह, एस. आर. एवं नारायण, कुमार अमरेन्द्र (2013) पर्यावरण अर्थशास्त्र (सिद्धांत एवं व्यवहार), प्रकाशक बिहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी, प्रेमचंद मार्ग राजेन्द्र नगर, पटना 800016 पृष्ठ संख्या 48–51

The Opinion V.10, N. 20 J-D 2021 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal

विवाह और लिव–इन–रिलेशनशिपः एक समाजशास्त्रीय विवेचन
(हिन्दू विवाह के विशेष संदर्भ में)

शैलजा पाण्डेय
शोधार्थिनी, समाजशास्त्र विभाग
म0गां0 काशी विद्यापीठ, वाराणसी

प्रो0 अमिता सिंह
समाजशास्त्र विभाग
म0गां0 काशी विद्यापीठ, वाराणसी

शोध सारांश–

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जिसकी कई प्राणिशास्त्रीय आवश्यकतायें भी हैं, जिसमें से दैहिक संतुष्टि एक आधारभूत आवश्यकता है। मनुष्य के अतिरिक्त अन्य प्राणी भी दैहिक इच्छाओं की पूर्ति करते हैं, लेकिन इसका उनमें केवल दैहिक आधार होता है, मनुष्यों में यौन–इच्छाओं की पूर्ति का आधार अंशतः दैहिक है, विशेषतः सामाजिक व सांस्कृतिक है। परिवार के बाहर भी दैहिक संतुष्टि सम्भव है किन्तु समाज ऐसे सम्बन्धों को अनुचित व अनैतिक मानता है। बदलते सामाजिक परिवेश में भारतीय समाज में कई ऐसी व्यवस्थाओं को भी बल मिला है जो अब तक समाज में निषिद्ध के रूप में चिन्हित थी, जिन्हें विधिक स्वीकृति प्राप्त हो चुकी है और अब ये अपनी सामाजिक स्वीकृति प्राप्ति के लिए प्रयासरत है। हमारे समाज का एक तबका धीरे–धीरे ऐसी प्रथाओं व व्यवस्थाओं से अनुकूलन कर रहा है जाति, धर्म, प्रथा अन्य सामाजिक, सांस्कृतिक बंधन व्यक्ति की आवश्यकता के आगे शिथिल पड़ते जा रहे हैं। लिव–इन–रिलेशनशिप या सहनिवास भी इन्हीं का एक परिणाम है। लिव–इन–रिलेशनशिप के नाम पर अब समाज में हर विवेकशील व्यक्ति विशेष के मस्तिष्क में उसकी व्यक्तिगत सोच के हिसाब से एक विचारणीय मुद्दा उभरता है। यह आधुनिक भारतीय समाज में एक बड़ी चुनौती के रूप में उभरा है। यह व्यवस्था भारतीय समाज पर पश्चिमीकरण के प्रभावों की एक झलक है जो आजकल महानगरों में खुले आम तथा अन्य नगरों में छिट–पुट तौर पर दिखाई देती है। प्रस्तुत विषय पर विवेचन या विचार–विमर्श करने से पूर्व हमें यह जान लेना चाहिए कि विवाह और लिव–इन–रिलेशनशिप का वास्तविक अर्थ क्या है–

प्रस्तावित शोध पत्र निम्नांकित उद्देश्यों को समाहित करता है–

(A) भारतीय समाज में लिव–इन–रिलेशनशिप की लोकप्रियता का कारण।

(B) विवाह व लिव–इन–रिलेशनशिप की संक्षिप्त तुलना।

प्रस्तुत शोध पत्र तथ्य संकलन के द्वितीयक स्त्रोतों पर आधारित है जिसमें मुख्य रूप से इंटरनेट का प्रयोग किया गया है तथा विभिन्न वेबसाइटों पर प्रकाशित शोध पत्रों व लेखों को आधार बनाया गया।

शब्द कुंजी– लिव इन–रिलेशनशिप, विवाह, वर्जनाऐ, सहनिवास, इत्यादि।

विवाह का शाब्दिक अर्थ है, ''उद्वह'' अर्थात् वधु को वर के घर ले जाना। हम कह सकते हैं कि विवाह वस्तुतः दो विषमलिंगियों को पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की सामाजिक, धार्मिक तथा कानूनी स्वीकृति है। विवाह एक मौलिक एवं सार्वभौमिक संस्था है।

बोगार्डस के अनुसार, ''विवाह स्त्री और पुरूष के पारिवारिक जीवन में प्रवेश करने की संस्था है।''

उपर्युक्त विवेचन हम विशेषतः हिन्दू धर्म के संदर्भ में कर रहे हैं। इस कारण हिन्दू विवाह को समझना हमारी प्राथमिकता है।

हिन्दू धर्म में विवाह–

हिन्दुओं में विवाह संस्था का सामाजिक संरचना में एक विशिष्ट स्थान है तथा यह विश्व के अन्य समाजों में पाए जाने वाले विवाहों से भिन्नता लिए हुए है। हिन्दुओं में विवाह एक विशिष्ट धार्मिक संस्कार के रूप में स्वीकृति प्राप्त किए हुए है। हिन्दू धर्म में वर्णित चार आश्रमों में गृहस्थ आश्रम को अन्य तीनों आश्रम ब्रह्मचर्य आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम व सन्यास आश्रम का मूल माना जाता है। विवाह के द्वारा ही एक व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर पाता है। हिन्दू धर्म में विवाह को एक अनिवार्य कर्त्तव्य माना गया है। हिन्दुओं में चार पुरूषार्थों– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की व्यवस्था की गयी है, जिनकी पूर्ति गृहस्थाश्रम में ही सम्भव है। इसी प्रकार से हिन्दुओं में प्रत्येक व्यक्ति पर तीन ऋण पितृ–ऋण, देव ऋण एवं ऋषि ऋण चुकाने का भार होता है। पितृ ऋण से मुक्ति हेतु विवाह करके संतानोत्पत्ति करना आवश्यक माना गया है। मनु विवाह को यौन संबंधों के उचित नियंत्रण एवं इहलोक व परलोक के सुख के लिए आवश्यक मानते हैं। शास्त्रों में भी वर्णित है कि पति–पत्नी और बच्चों से युक्त मानव ही पूर्ण मानव है। वैवाहिक संबंधों के परिणामस्वरूप स्त्री व पुरूषों में पारस्परिक अधिकार एवं कर्त्तव्यों का उदय होता है, इस कारण हिन्दुओं में विवाह एक संस्कार के रूप में स्वीकार किया गया है। आध्यात्मिक प्रयोजनों से ही स्त्री–पुरूष परस्पर स्थायी संबंधों में बंधते हैं।

अन्य समाजों की भांति हिन्दू विवाह मात्र एक समझौता नहीं है, बल्कि यह सामाजिक व धार्मिक उद्देश्य पूर्ति के लिए आवश्यक कर्त्तव्य के रूप में स्वीकार किया गया है। विवाह के तीन उद्देश्य धर्म, प्रजा व रति बताए गए हैं, जिनमें सर्वप्रथम धर्म है तथा रति को गौण माना जाता है। इसी कारण हिन्दू धर्म में पत्नी को धर्म–पत्नी कहा जाता है। हिन्दू विवाह का उद्देश्य केवल रति (आनन्द) की प्राप्ति नहीं है अपितु धर्म व प्रजा (संतान) के उद्देश्य की प्राप्ति व पूर्ति प्रमुख है।

इस प्रकार हिन्दू विवाह धार्मिक कार्यों का पूर्ति, पुत्र प्राप्ति, रति (आनन्द), ऋणों से मुक्ति, पुरूषार्थों की पूर्ति, स्त्री पुरूष के व्यक्तित्व का विकास, परिवार, समाज एवं समुदाय की निरंतरता एवं उनके प्रति अपने दायित्वों का निर्वाह आदि उद्देश्यों को अपने में समाए हुए हैं। वर्तमान समय में हिन्दू विवाह के धार्मिक उद्देश्य का महत्व काफी कुछ घट गया है, अब तो रति (आनन्द) को विशेष महत्व दिया जाने लगा है। लिव–इन–रिलेशनशिप भी इसी का परिणाम है।

लिव–इन–रिलेशनशिप–

भारतीयों की सोच बदल रही है, रिश्तों को लेकर भी और उसके निभाने के तरीकों को लेकर भी। कल तक जो वर्जनाएँ थी आज वह स्वतंत्रता है। आजाद ख्याली है और साथ ही अपने, अपनी जिंदगी के फैसले खुद लेने का हक भी। विवाह अब महज एक ऐसी ही परंपरा मात्र है जिसे लेकर छोटे–बड़े शहरों में रहने वाले युवाओं की सोच बदल रही है। अब विवाह करके दो लोगों को साथ रहने के लिए सामाजिक सहमति और परिवार की सहमति की अनिवार्यता की आवश्यकता नहीं है। अब युवा साथ रहने का फैसला करते हैं तो सामाजिक व पारिवारिक स्वीकृति के बजाय स्वयं की स्वतंत्रता व स्वच्छन्दता को अधिक महत्व देते हैं। लिव–इन–रिलेशनशिप भी इसी मानसिकता का परिणाम है।

जब कोई युवक या युवती शादी किये बिना स्वेच्छा से एक ही छत के नीचे पति–पत्नी की तरह रह रहे हैं तो उस रिश्ते को लिव–इन–रिलेशनशिप कहा जाता है।

विवाह तथा लिव–इन–रिलेशनशिप–

लिव–इन–रिलेशनशिप विवाह संबंधी जिम्मेदारियों से मुक्त करता है तथा व्यैक्तिक स्वच्छंदता का समर्थक है, साथ ही साथ ये व्यक्ति को नैतिक व सामाजिक दुविधा के रास्ते की ओर भी ले जाता रहा है। खासकर भारतीय सामाजिक व्यवस्था में, एक ऐसे देश में जहां सामाजिक, मान–मर्यादा, जाति भेद–भाव के नाम पर अंर्तजातीय विवाह या प्रेम–विवाह करने पर लोग हत्या जैसे जघन्य कार्य को भी करने से पीछे नहीं हटते, वहां पर लिव–इन–रिलेशनशिप जैसी व्यवस्था को अपनाना स्वयं में एक बड़ी चुनौती है। जो भी हो समाज में धीरे–धीरे निम्न स्तर पर ही सही परन्तु बदलाव की प्रक्रिया अनवरत् चलती रहती है। इसी संदर्भ में मुम्बई, दिल्ली, बंगलौर जैसे बड़े औद्योगिक नगरों में आर्थिक बोझ कम करने के विकल्प या विवाह की जिम्मेदारियों से मुक्ति के रूप में लिव–इन–रिलेशनशिप विवाह व्यवस्था के एक विकल्प के रूप में लोकप्रिय हो रहा है।

भारतीय समाज में लिव–इन–रिलेशनशिप एक विवाद का मुद्दा है। यहां एक वर्ग इसे समाज और मानवीय मूल्यों के लिए खतरा बताता है वहीं एक ऐसा भी वर्ग है जो इसे पुरातन परंपरा में बदलाव के रूप में देख रहा है।

सदियों से रीति–रिवाज, परम्परा व प्रथा को सहेजने वाला हमारा भारतीय समाज अब भी इसी उधेड़बुन में है कि लिव–इन–रिलेशनशिप को सही माने या गलत इसी कारण यह व्यवस्था भारतीय मानस में त्रिशंकु की स्थिति में है क्योंकि न तो यह पूरी तरह दोषमुक्त व्यवस्था है और न ही पूर्णतः दोषयुक्त है। कुछ संदर्भों में हम इसे सही मान सकते है वही कुछ में ये निंदा का पात्र भी है। आधुनिक युवा पीढ़ी जहां इसे समाज के लिए सही मानती है, वही हमारी अनुभवी पीढ़ी, जिसे सामाजिक पहलुओं की समझ है वो अब भी इसे अपनाने में हिचक रहे है वो इस निंदनीय नजरों से देखते है तथा इस व्यवस्था को सवालों को कटघरे में खड़ा करते है।

मुख्यतः पश्चिमी समाज के अंधानुकरण से लिव–इन–रिलेशनशिप या सह प्रवास की शुरूआत ऐसे वर्ग ने की जो कि शिक्षित व आर्थिक रूप से स्वतंत्र है और विवाह से आने वाली सामाजिक, आर्थिक जिम्मेदारियों की जकड़न से बचना चाहते हैं क्योंकि इस व्यवस्था में विवाह की तरह दायित्वों व कर्त्तव्यों के निर्वहन की कोई सामाजिक बाध्यता नहीं होती है।

इस व्यवस्था का मुख्य उद्देश्य वैयक्तिक स्वतंत्रता है, जिसके द्वारा युगल एक दूसरे के साथ तो रहते हैं, परन्तु एक–दूसरे के प्रति जवाबदेह नहीं होते हैं। नई पीढ़ी का एक वर्ग जो इस व्यवस्था को समर्थन दे रहा है वह यह मानता है कि किसी के साथ रहना उनका निजी फैसला है न कि सामाजिक।

लिव–इन–रिलेशनशिप क्या केवल यौन अभिमुखता है, ये युवा पीढ़ी का विवाह व्यवस्था में विश्वास की कमी है? ये केवल आर्थिक जरूरतों की पूर्ति की एक साझेदारी है जो आर्थिक स्थिति को संभालने व सामंजस्य के लिए महानगरीय परिवेश में आवश्यक है। हमारे समाज में पुरूषों के विवाहेत्तर संबंध कभी भी कठोरता से अनैतिक नहीं माने जाते रहे हैं। एक तरह से इन्हें सामाजिक दया का पुरस्कार प्राप्त रहा है।

विवाह एक सामाजिक संघ के साथ–साथ कानूनी समझौता भी है, विवाह के बंधन में बंधने से पहले जोड़े अब रिश्ते और संगतता का परीक्षण करना चाहते है जो तलाक के बढ़ते मामलों को देखते हुए सही भी है क्योंकि इस तरह वो एक–दूसरे को समझ लेते है तथा दूसरी तरफ यह विवाह के साथ–साथ आने वाले वित्तीय भार को भी घटा देता है, इसी सब कारणों को आधार बनाकर युवा पीढ़ी लिव–इन–रिलेशनशिप को समर्थन प्रदान कर रही है। परन्तु क्या यह सचमुच समस्या का समाधान है या स्वयं में एक समस्या है। निकिता जुनेजा जो एक MNC में कार्यरत है और अपने साथी के साथ लिव–इन–रिलेशनशिप में रहती है उनका कहना है कि इस तरह के रिश्ते में सामाजिक नियम व दबाव आप पर हावी नहीं होते है। आप अपनी व्यक्तिगत स्वतंत्रता का भरपूर लाभ उठा सकते है आप पर

रिश्तेदारों व अभिभावकों को प्रसन्न करने का कोई दबाव नहीं रहता। इस तरह Miss Juneja की बात से ऐसा लगता है कि यह व्यवस्था व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ाती है तथा सामाजिक नियमों को दरकिनार करती है अर्थात् इस व्यवस्था का सामाजिक नियमों से कोई सरोकार नहीं है, जो भारतीय समाज व्यवस्था के लिए घातक सिद्ध होगा।

हालांकि इस व्यवस्था में कानूनी बाधाएं भी विवाह से बहुत कम है, वैवाहिक दंपत्ति की अपने वैवाहिक दायित्वों से मुक्ति की, एक बदसूरत संभावना होती है–तलाक। जो कि बहुत अधिक कानूनी दांवपेचों के साथ–साथ एक पीड़ाजनक अनुभव होता है जबकि लिव–इन–रिलेशनशिप में साथी से असंतोष ही इस व्यवस्था से निकलने से संबंधित सभी बाधाओं के घेरे को समाप्त करने के लिए काफी होता है। रीना झुनझुनवाला जो कि पेशे से एक बैंकर है, उनका कहना है कि लिव–इन–रिलेशनशिप से हमें भावनात्मक लाभ मिलता है क्योंकि तलाक के मुकाबले लिव–इन–रिलेशनशिप से निकलना काफी आसान है।

विवाह न सिर्फ दो व्यक्तियों का बल्कि दो परिवारों का मिलन है। विवाह में लड़के–लड़की सामाजिक तौर पर एक सूत्र में बंधते हैं जिसे समाज मान्यता प्रदान करता है और जिसमें दोनों पक्षों का सम्मान एवं प्रतिष्ठा निहित है।

भारतीय समाज में आज लोगों की पुरूष प्रधान मानसिकता में कमी तो आयी है परन्तु अभी भी यह भावना काफी प्रबल है। ऐसे में लिव–इन–रिलेशनशिप में यदि पुरूष साथी महिला को छोड़कर चला जाए तो महिला को समाज में कई तरह की प्रताड़ना का सामना करना पड़ता है। इसके अलावा महिला को दोबारा पार्टनर मिलने में काफी मुश्किल होती है।

इस रिश्ते की एक बहुत बड़ी कमी है इस रिश्ते से पैदा होने वाले बच्चे। आमतौर पर इन बच्चों में सामाजिक नियमों की जानकारी का अभाव होता है। इसके अलावा ये बच्चे समाज के अन्य बच्चों से ज्यादा असुरक्षित महसूस करते हैं। यदि उनके माँ–बाप किसी कारणवश अलग हो जाते हैं तो उनको न तो पारिवारिक मान्यताओं का पता होता है और न ही उन्हें वो संस्कार मिलता है। अंततः वे समाज में तिरस्कृत और अपमानित होते हैं। भले ही समाज में आज लिव–इन–रिलेशनशिप तेजी से युवाओं के बीच प्रचलित हो लेकिन आज भी भारत के पारंपरिक समाज में इसको मान्यता नहीं मिल सकती है।

परन्तु आज भारतीय युवाओं के लिए कैरियर ही सब कुछ है। वह कैरियर बनाने के लिए विवाह की प्रतीक्षा कर सकते हैं। इसलिए वो लिव–इन–रिलेशनशिप में रहने को तरजीह दे रहे हैं, क्योंकि कैरियर ही उनका प्रमुख ध्यान बिन्दु है। इस व्यवस्था में मिलने वाली रियायतों के कारण इसकी लोकप्रियता आधुनिक भारत के एक विशेष वर्ग में बढ़ती जा रही है।

यदि हम देखें तो लिव–इन–रिलेशनशिप भारतीय सामाजिक व्यवस्था के सांचे में कहीं भी फिट नहीं बैठता, हालांकि इसे समाज के अनुकूल बनाने के लिए, वैयक्तिक हितों की समर्थक माननीय सर्वोच्च न्यायालय व कुछ गैर–सरकारी संगठन लगातार कार्यरत रहें व इस दिशा में इन्होंने कई प्रयास किए हैं। भारतीय न्यायपालिका का हस्तक्षेप इसमें एक सराहनीय कदम है, 13 अप्रैल 2015 को माननीय न्यायाधीश इकबाल व अमित्व राय के खण्डपीठ ने कहा कि लिव–इन–रिलेशनशिप में रहने वाले जोड़े कुछ शर्तों पर कानूनी रूप से वैवाहिक माने जाएंगे तथा महिला को कानूनन विवाहिता पत्नी के समान ही अधिकार प्रदान किया जाएगा।

लिव–इन–रिलेशनशिप के संरक्षण हेतु बने इन प्रावधानों के दुरूपयोग के मामले भी कम नहीं है। महानगरों और छोटे शहरों में लिव–इन–रिलेशनशिप के नाम पर महिलाओं द्वारा पुरूषों के खिलाफ शादी

का झांसा देकर यौन शोषण की शिकायतों में बढ़ोत्तरी हुई है। हाल ही में दिल्ली हाईकोर्ट ने ऐसे मामलों में पुलिस को बलात्कार के बजाय विश्वास भंग (क्रिमिनल ब्रीच आफ ट्रस्ट) का मुकदमा दर्ज कर जांच करने का आदेश दिया है, जिससे लिव–इन–रिलेशनशिप में अदालतों द्वारा की गयी व्यवस्था के दुरूपयोग को रोका जा सके।

कुछ प्रमुख विचारणीय सुझाव–

भारतीय संस्कृति अपनी विशिष्टता के कारण ही विश्व प्रसिद्ध रही है, भारतीय सामाजिक व्यवस्था को बनाए रखने में कई संस्थायें अपना महत्वपूर्ण योगदान देती रही है, जैसे–परिवार, विवाह, नातेदारी, जाति व्यवस्था आदि। ये सभी संस्थाऐं भारतीय समाज को वैश्विक पटल पर एक अलग पहचान प्रदान करती है, इसमें विवाह संस्था भी प्रमुख स्थान रखती है, लिव–इन–रिलेशनशिप समलैंगिक विवाह आदि अनैतिक व असामाजिक व्यवस्था इस संस्था की आदिकाल से चली आ रही गरिमा व जनकल्याण की भावना को ठेस पहुंचा रही है, क्योंकि ये व्यवस्थाऐं सामूहिकता की जगह व्यक्तिवादिता को बढ़ाती है जो किसी भी व्यक्ति को सम्पूर्ण समूह, समुदाय, समाज की बजाए वैयक्तिक दृष्टि से सोचने की ओर प्रेरित करती है, इस दिशा में सुधार हेतु कुछ सुझाव निम्नवत् है–

- महानगरों में शिक्षा के पश्चिमीकरण के साथ–साथ भारतीयकरण पर बल देना चाहिए, बच्चों को प्रारम्भ से युवावस्था तक भारतीय समाज की विशिष्टता से परिचित करना चाहिए। भारतीय समाज विदेशी चाल–चलन व तौर तरीके के अंधानुकरण के बजाए भारत की देशीयता से पोषित व पल्लवित होना चाहिए। इसके लिए सरकार को विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक पढ़ाऐ जाने वाले पाठ्यक्रमों में भारतीय संस्कृति से परिचित कराये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए।
- विवाह को सामाजिक जिम्मेदारी के रूप में परिभाषित किया जाना चाहिए न कि सामाजिक बाध्यता के रूप में। भारतीय समाज में एक वर्ग के लोग अभी भी विवाह को ऐसे बोझ के रूप में देखते हैं जिसमें मुख्यतः सामाजिक दायित्वों व कर्त्तव्यों का भार होता है, इस विचारधारा को बदलने की आवश्यकता है।
- महानगरों में सरकार को ऐसे निवास स्थान की व्यवस्था करनी चाहिए, जहां एक अविवाहित व कामकाजी व्यक्ति सुविधापूर्वक रह सकें। महानगरों में आवास की समस्या युवा वर्ग को सहनिवास की ओर जाने के लिए बाध्य करती है।
- महानगरों में अकेली महिलाओं के रहने के लिए एक सुरक्षित वातावरण बनाना चाहिए। महानगरों में असुरक्षा की भावना भी इस तरह के रिश्तें को अपनाने में एक अहम भूमिका निभाती है।
- महिलाओं को आत्मनिर्भर बनाना चाहिए, जिससे उनमें पुरूष साथी की आवश्यकता की भावना का अंत हो। समाज में पुरूष प्रधानता की भावना में कमी तो आई है परन्तु यह भावना पूर्णतः समाप्त नहीं हो सकी है। इस ओर समाज व सरकार दोनों को ध्यान देना चाहिए।
- अगर एक वर्ग इस तरह के रिश्ते को अपनाना चाहता है तो समाज को इसे स्वीकार कर लेना चाहिए, जिससे लोग खुलकर इस विषय पर बात कर सकते। आज भी जो लोग इस रिश्ते में रहते हैं अधिकांशतः वो स्वयं को विवाहित बताकर रहते हैं जो कि अनैतिक है।
- जो लोग विवाहित होते हुए भी इस तरह के रिश्ते में प्रवेश करते हैं तथा अपने साथी का विश्वास भंग करते हैं उन पर कठोर कानूनी कार्यवाही होनी चाहिए, जिससे कोई भी स्त्री या पुरूष विवाह जैसी पवित्र सामाजिक संस्था का उपहास न करें साथ ही किसी भी पक्ष का कोई नुकसान न हो।

- महानगरों या अन्य स्थानों पर जहां भी ऐसे जोड़े रहते हैं समाज उन्हें निन्दनीय नजरों से देखता है। समाज की इस सोच को बदलने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि कानूनी मान्यता प्राप्ति के बाद ऐसे रिश्ते अनैतिक माने जा सकते हैं, परन्तु ये अवैध नहीं है।
- हिन्दू विवाह में तलाक के नियमों को थोड़ा लचर बनाना पड़ेगा क्योंकि तलाक जैसी भयावह स्थिति से बचने के लिए भी युगल इस व्यवस्था को महत्व दे रहे हैं, क्योंकि भारतीय कानून व्यवस्था में हिन्दू विवाह में तलाक अत्यधिक कानूनी दाव पेंचों से भरी प्रक्रिया है। महिला व पुरूष दोनों के लिए यह मानसिक प्रताड़ना के साथ सामाजिक प्रताड़ना भी साथ लाती है। समाज को इस दिशा में भी बदलाव की आवश्यकता है।
- अनुलोम व प्रतिलोम विवाहों से संबंधित सामाजिक वर्जनाओं को भी कम करने की आवश्यकता है, क्योंकि यह बाध्यता भी युवा पीढ़ी को लिव–इन–रिलेशनशिप की ओर आकर्षित होने में सहायक बन रही है।
- लिव–इन–रिलेशनशिप में रहने का फैसला आपको पारिवारिक व सामाजिक दायित्वों से मुक्ति देता है। भारतीय युवा वर्ग की इस सोच को बदलने पर बल देना चाहिए। पारिवारिक व सामाजिक नियमों को व्यक्ति के अनुकूल बनाने का प्रयास किया जाना चाहिए जिससे व्यक्ति इन्हें बोझ न माने व सहर्ष स्वीकार करें।
- रिश्ते तोड़ने की आसानी लिव–इन–रिलेशनशिप की खासियत है, कई बार एक पार्टनर दूसरे को आहत कर आगे बढ़ जाता है। इसकी परिणति कई बार गम्भीर अपराध के रूप में सामने आती है। कानून व्यवस्था को कठोर करके इस स्थिति का हल निकालना चाहिए।
- लिव–इन–रिलेशनशिप में रहने वाले बच्चों के लिए विशेष कानून होने चाहिए। इन बच्चों के दिमाग पर बुरा प्रभाव पड़ता है, ये सामाजिक नियमों का सम्मान नहीं करते तथा समाज में दूसरे बच्चों की तुलना में अधिक असुरक्षित महसूस करते हैं। ऐसा कानून होने चाहिए कि महिला के गर्भवती होने पर विवाह की अनिवार्यता हो ताकि इस गम्भीर स्थिति से बचा जा सके।

निष्कर्ष–

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि सुप्रीम कोर्ट व इस व्यवस्था के समर्थकों के प्रयासों के बावजूद भी लिव–इन–रिलेशनशिप भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अब भी हाशिए पर है। समाज के एक बड़े वर्ग द्वारा इसे अभी भी वर्जित माना जाता है। विवाह, जितना पवित्र व अटूट बंधन है, लिव–इन–रिलेशनशिप उतना ही सामाजिक निंदनीय व कमजोर बंधन माना जाता है, क्योंकि इस पर सामाजिक नियम व दायित्वों का कोई अंकुश नहीं है जो इसे दिशाहीन होने की प्रबल संभावना को दर्शाता है। साथ ही साथ यह व्यवस्था महिलाओं को अधिक हानि पहुंचाती है। भारतीय पितृ–सत्तात्मक समाज में अभी भी महिलाएं, रूढ़ियों व कई सामाजिक मानदण्डों व नियमों से स्वयं के लिए लड़ रही है। विशेषकर, भारतीय समाज में यदि महिला किसी पुरूष के साथ एक रिश्ते से गुजर कर आई है तो उसे उचित सम्मान प्राप्त नहीं होता बल्कि उसे सामाजिक निंदा का पात्र बनना पड़ता है। दूसरी तरफ इस प्रकार के रिश्ते से पैदा होने वाले बच्चों को भी उपेक्षा व निंदा का सामना करना पड़ता है। इस व्यवस्था में पुरूषों की बजाए महिलायें अधिक प्रभावित व प्रताड़ित हो रही है। इस व्यवस्था ने विवाह व्यवस्था की विश्वसनीयता को बहुत अधिक प्रभावित किया है, जिससे समाज की एक बहुत ही सम्मानित व आवश्यक सामाजिक संस्था की नींव खतरे में है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

- गुप्ता एम. एल., (2003), समाजशास्त्र; साहित्य भवन पब्लिकेशन, जयपुर।
- गोयल अनुराधा, 22 फरवरी 2013, अमर उजाला, लिव–इन–रिलेशनशिप : जरूरी है सावधानी।
- डागा कीर्ति, shortessay on live in relationship; www.ukessay.com
- www.wikipedia.com
- https://www. the betterindia.com/want to Get into a live in Relationship? mustneed to know, Mach 3, 2018.
- https://www.webdunia.com/ लिव इन रिलेशनशिप अपनी अपनी नैतिकता;
- https://www.ukessays.com/ लिव इन रिलेशनशिप पर अलग–अलग विचार।
- https://www.Differencebetween.into/Differencembeween marriage and live in Relationship;

*****

जनजातीय लोक संस्कृतिः जीवन रक्षा के लिए संघर्ष

डॉ0 मनोज कुमार
पी.डी.एफ.
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी

सार संक्षेप

भारत परंपरागत रूप से विभिन्न संस्कृतियों और लोगों का घर रहा है। विविध आबादी में, एक महत्वपूर्ण हिस्सा आदिवासी लोगों का है। जनजातियों की विशिष्टता उनके रीति–रिवाजों, संस्कृति, विश्वासों और उन सभी सद्भावों में निहित है जिसमें वे प्रकृति के साथ मिलकर जीवित रहते हैं। जहाँ तक जीवन स्तर का संबंध है जनजातीय समुदाय सामान्य जनसंख्या से बहुत पीछे हैं। लेकिन फिर उनके पास संस्कृति की बहुत समृद्ध विरासत है। उनका अपना धर्म, भाषा, देवी–देवता, पहनावा, त्योहार और खान–पान है। उनमें से कुछ पितृसत्तात्मक हैं और कुछ महिला प्रधान हैं। स्वतंत्रता के बाद के युग ने आदिवासी को आधुनिकीकरण और शहरीकरण के कारण बड़े बदलावों से गुजरते हुए देखा। आदिवासी संस्कृति को खतरा पैदा करने वाले बाहरी प्रभाव के बावजूद आदिवासी लोग अपनी पहचान से चिपके हुए हैं। जनजातीय संस्कृति जिस बदलाव से गुजर रही है, उसका स्वागत और अवांछित दोनों तरह के प्रभाव हैं।

मुख्य शब्द– वैधानिक प्रावधान, संचार के साधन, ढांचागत सुविधा, शिक्षा ।

प्रस्तावना

भारत को हमेशा अपनी पारंपरिक कला और शिल्प के माध्यम से सांस्कृतिक और पारंपरिक जीवंतता को चित्रित करने वाली भूमि के रूप में जाना जाता था। देश भर में फैले 35 राज्यों और केंद्र शासित प्रदेशों की अपनी विशिष्ट सांस्कृतिक और पारंपरिक पहचान है, और वहां प्रचलित कला के विभिन्न रूपों के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता है। भारत में हर क्षेत्र की अपनी शैली और कला का आधार है, जिसे लोक कला के रूप में जाना जाता है। भारत की लोक और आदिवासी कलाएँ बहुत ही जातीय और सरल हैं, फिर भी देश की समृद्ध विरासत के बारे में बोलने के लिए रंगीन और जीवंत हैं। भारत में लोक कला की पारंपरिक सौंदर्य संवेदनशीलता और प्रामाणिकता के कारण अंतरराष्ट्रीय बाजार में स्पष्ट रूप से काफी संभावनाएं हैं। भारत के ग्रामीण लोक चित्रों में विशिष्ट रंगीन डिजाइन हैं, जिन्हें धार्मिक और रहस्यमय रूपांकनों के साथ व्यवहार किया जाता है। लोक कला साझा सामुदायिक मूल्यों और सौंदर्यशास्त्र को व्यक्त करके सांस्कृतिक पहचान व्यक्त करती है। इसमें कपड़ा, लकड़ी, कागज, मिट्टी, धातु और अन्य वस्तुओं सहित उपयोगितावादी और सजावटी मीडिया की एक श्रृंखला शामिल है, जो अपनी जातीय और पारंपरिक सुंदरता के कारण विदेशी पर्यटकों के बीच काफी लोकप्रिय हैं।

भारत के इस विविध आबादी में, एक महत्वपूर्ण हिस्सा आदिवासी लोगों का है, जो भूमि के मूल निवासी हैं। जनजातियों की विशिष्टता उनके रीति–रिवाजों, संस्कृति, विश्वासों और उन सभी सद्भावों में निहित है जिसमें वे प्रकृति के साथ मिलकर जीवित रहते हैं।

जनजातीय समुदाय की जनगणना के अनुसार देश की कुल जनसंख्या का 8.14 प्रतिशत है। जनजातीय समुदाय जीवन स्तर के संबंध में सामान्य जनसंख्या से बहुत पीछे हैं। लेकिन फिर उनके पास संस्कृति की

एक बहुत समृद्ध विरासत है जो गैर–आदिवासियों को मोहित नहीं करती है। उनका अपना धर्म, भाषा, देवी–देवता, पहनावा, त्योहार और खान–पान है। उनमें से कुछ पितृसत्तात्मक हैं और कुछ महिला प्रधान हैं। संस्कृति को इतिहास, तत्काल और दूर के वंश, प्रतिबिंबों, प्रतिक्रियाओं, मूल्यों, धर्म, भाषा और दृष्टिकोण द्वारा आकार देने वाले जीवन के बहुआयामी तरीके के योग के रूप में परिभाषित किया जा सकता है। संस्कृति चाहे लोक हो या शास्त्रीय, मौखिक या साहित्यिक समय के साथ विकसित होती है। आदिवासी लोक संस्कृति भी समय बीतने के साथ विकसित हुई है, कभी–कभी बेहतर और कुछ मामलों में, बदतर स्थिति के लिए।

स्वतंत्रता के बाद के युग ने आदिवासी को आधुनिकीकरण और शहरीकरण के कारण बड़े बदलावों से गुजरते हुए देखा। आदिवासी संस्कृति को खतरा पैदा करने वाले बाहरी प्रभाव के बावजूद आदिवासी लोग अपनी पहचान से चिपके हुए हैं।

सांस्कृतिक परिवर्तन ज्ञान, दृष्टिकोण, विचारों, व्यवहार, धार्मिक विश्वासों और समुदाय या समाज की रचना करने वाले व्यक्तियों की मूल्य प्रणाली में परिवर्तन है। इस प्रकार सांस्कृतिक परिवर्तन एक बहुआयामी प्रक्रिया है। जनजातीय संस्कृति जिस बदलाव से गुजर रही है, उसका स्वागत और अवांछित दोनों तरह के प्रभाव हैं। भारत के जनजातीय लोगों में सांस्कृतिक परिवर्तन के लिए जिम्मेदार कुछ कारक निम्नलिखित हैं:

- भारत के संविधान में वैधानिक प्रावधान
- आदिवासियों के बीच शिक्षा का प्रसार
- संचार और परिवहन का विस्तार
- औद्योगीकरण और शहरीकरण
- ईसाई मिशनरी
- व्यावसायिक गतिशीलता
- युवा आदिवासी की उदासीनता

भारत के संविधान में वैधानिक प्रावधानों ने आदिवासी लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक और आर्थिक जीवन में बहुत सारे बदलाव लाए हैं। संविधान में कुछ प्रावधानों के माध्यम से, सरकार ने आदिवासी समूहों से शैक्षिक पिछड़ेपन को मिटाने का सफलतापूर्वक प्रयास किया।

शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का वाहन है। शिक्षा के प्रसार के माध्यम से, आदिवासी शहरी संस्कृति के संपर्क में आए जिसने उन्हें अपनी परंपराओं और रीति–रिवाजों का मूल्यांकन करने के लिए मजबूर किया। आधुनिक शिक्षा के साथ आधुनिक मूल्य आए जो आदिवासी समाज के सदियों पुराने पारंपरिक मूल्यों से टकरा गए हैं।

संचार के साधनों के प्रसार ने आदिवासियों को जनजातियों और गैर–जनजातियों दोनों के साथ बातचीत करने का अवसर दिया। वैज्ञानिक और तकनीकी प्रगति ने दृष्टिकोणों, विश्वासों और यहां तक कि परंपराओं में भी बदलाव लाए हैं। समाचार पत्रों, टेलीविजन और अब स्मार्ट फोन के माध्यम से इंटरनेट के प्रसार ने सचमुच आदिवासी संस्कृति की जड़ों को हिलाकर रख दिया है।

ढांचागत सुविधा सड़कों और नदियों पर पुलों के निर्माण जैसी ढांचागत सुविधाओं ने दूरदराज के गांवों के बीच की भौतिक दूरी को कम कर दिया है। सड़कों ने शहरी दुनिया के संपर्क में आने वाले आदिवासी लोगों के अलगाव को तोड़ दिया। हालांकि, बाहरी दुनिया से संपर्क का नतीजा हमेशा सकारात्मक नहीं रहा है। आदिवासी समाज की पारंपरिक सेटिंग्स पर इसके कई नकारात्मक प्रभाव पड़े। इस संदर्भ में प्रसिद्ध

मानवविज्ञानी वेरियर एल्विन को उद्धृत किया जा सकता है, जो अरुणाचल जनजातियों पर तार्किक दृष्टिकोण से लिखते हैं:

सड़कें निश्चित रूप से जनजातीय लोगों के लिए अभिशाप होने के साथ–साथ वरदान भी हो सकती हैं। कहीं–कहीं ये भ्रष्टाचार और शोषण के जरिया रहे हैं। वे नई बीमारियाँ, नैतिक पतन और सांस्कृतिक पतन लेकर आए हैं। उन्होंने साहूकारों, लोभी व्यापारियों, शराब विक्रेताओं, वकीलों के तंबू के लिए पहाड़ियों और जंगलों में गहराई तक प्रवेश करना आसान बना दिया है। वे पैसा अंदर ला सकते हैं, लेकिन वे पैसे भी निकाल सकते हैं। उन्होंने सस्ते बाजार के कपड़े के आयात से हथकरघा उद्योग को नष्ट करने में मदद की है; वे अभद्र और घटिया वस्तुओं को लोगों के द्वार पर ले आए हैं।

शहरीकरण जनजातीय क्षेत्रों में सामाजिक–सांस्कृतिक व्यवस्था को सबसे अधिक प्रभावित करने वाला कारक शहरीकरण की तीव्र गति है। शहरीकरण ने दूरदराज के गांवों में रहने वाले जनजातीय लोगों को शहरों में नौकरी की तलाश करने की अनुमति दी है और इस तरह बड़ी संख्या में आदिवासी आबादी शहरों में चली गई है। वहां वे शहरी संस्कृति के संपर्क में आए। आदिवासियों के पहनावे में स्पष्ट परिवर्तन देखा जा सकता है। हम आदिवासी महिलाओं को साड़ीब्लाउज और सलवार–कमीज पहने हुए देख सकते हैं। आदिवासियों के खान–पान पर भी शहरी संस्कृति का प्रभाव पड़ा है। फास्ट फूड उनके मेन्यू में आ गया है। खेती और पौष्टिक अनाज जैसे नाचनी और कोदरी का उपयोग कम हो गया है और गेहूं का प्रभुत्व अधिक हो गया है।

ईसाई मिशनरियों ने भी आदिवासी संस्कृति पर अपनी छाप छोड़ी है। उनकी गतिविधियों का प्रत्यक्ष प्रभाव ईसाई धर्म में परिवर्तित जनजातियों की संख्या में देखा जा सकता है। आदिवासी धर्म अब प्रचलन में नहीं हैं और हिंदू धर्म, ईसाई धर्म और बौद्ध धर्म जैसे प्रमुख धर्मों ने उनकी जगह ले ली है। ईसाई धर्म ने अधिक उन्नत समुदाय के लिए द्वार खोल दिया और आदिवासी क्षेत्रों में स्कूलों की स्थापना करके न केवल मुख्य भूमि भारतीय समुदाय के लिए, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए भी आदिवासी को उजागर किया। जबकि ईसाई धर्म ने अंतर्राष्ट्रीय समुदाय के लिए द्वार खोल दिया, इसने आदिवासियों से उनकी विशिष्ट आदिवासी पहचान छीन ली।

आदिवासियों के लिए आधुनिक चिकित्सा की शुरुआत करने में ईसाई मिशनरी अग्रणी थे। पूर्व में आदिवासी जंगलों में उपलब्ध जड़ी–बूटियों के अपने अद्भुत ज्ञान से बीमारियों का इलाज करते थे। मिशनरियों द्वारा एलोपैथिक दवाओं की शुरुआत के साथ, प्राकृतिक चिकित्सा की यह कला आज मृत्यु शैया पर पड़ी है।

आधुनिक शिक्षा के प्रसार के साथ एक नए आर्थिक वर्ग का उदय हुआ। शिक्षित आदिवासी सरकारी रोजगार में लीन हैं और इस प्रकार गैर–कृषि गतिविधियों में लगे हुए हैं। उन्होंने अपनी पारंपरिक कृषि और संबद्ध व्यवसायों को छोड़ दिया और शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों में चले गए। शैक्षिक अवसरों के प्रसार के साथ, अधिक से अधिक युवा अपने पुश्तैनी गांवों को छोड़कर रोजगार बाजार के क्षेत्र में प्रवेश कर रहे हैं। आदिवासी धीरे–धीरे अपनी जमीन और गांवों से भावनात्मक लगाव खो रहे हैं।

शहरीकरण और व्यावसायिक गतिशीलता ने आदिवासियों को कृषि की उपेक्षा कर दी है जो सदियों से उनका मुख्य पेशा रहा है। पूर्व में, आदिवासी जो कुछ भी खाते थे उसके लिए स्वतंत्र थे। पुरानी प्रथा की जैविक खेती ने भूमि की उर्वरता को बनाए रखा और बढ़ाया है। आज उर्वरकों और कीटनाशकों के प्रयोग ने भूमि की उत्पादकता को कम कर दिया है।

नई आदिवासी पीढ़ी अपनी समृद्ध संस्कृति के संरक्षण के प्रति उदासीन हो गई है। शिक्षा और बाहरी दुनिया के संपर्क ने उन्हें अंधा कर दिया है और वे अपनी सदियों पुरानी संस्कृति को संरक्षित करने के लिए पर्याप्त

"शांत" नहीं पाते हैं। उन्होंने एक गलत धारणा को बढ़ावा दिया है कि शहरी कुछ भी ऊंचा है और स्वीकृत मानदंड है और आदिवासी कुछ भी असंस्कृत है। सादगी और एकजुटता की आदिवासी नैतिकता का क्षरण हुआ है। आधुनिकीकरण और विकास के नाम पर सदियों पुराने रीति–रिवाजों और परंपराओं से छेड़छाड़ की गई है।

इसी उदासीनता के कारण अनेक आदिवासी कलाएँ विलुप्त होने की दहलीज पर आ गई हैं। संगीत और नृत्य हमेशा से आदिवासी संस्कृति के सबसे महत्वपूर्ण पहलू रहे हैं। लोक गीत एक जनजाति के सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। हर अवसर के लिए और दैनिक दिनचर्या की कई गतिविधियों के लिए गाने हैं। उदाहरण के लिए, खेती की गतिविधियों के दौरान गाए गए गीतों ने नौकरी की थकान को हल्का कर दिया और गायक में उत्साह पैदा कर दिया। लोक गीत उस जनजाति की मान्यताओं, परंपराओं और जीवन शैली का दर्पण होते हैं जिससे वे संबंधित होते हैं। शहरी संस्कृति से प्रभावित युवा आदिवासी उन्हें सीखने से कतरा रहे हैं। पारंपरिक संगीत और नृत्य का स्थान फिल्मी गीतों और नृत्य ने ले लिया है। युवा आदिवासी अपने पारंपरिक आदिवासी संगीत वाद्ययंत्र जैसे तूर, तर्पू, बांसुरी, कांस्य प्लेट जिसे "थली" आदि के रूप में जाना जाता है, बनाने और बजाने में कोई दिलचस्पी नहीं है। उनमें से बहुत कम लोगों को इस समृद्ध विरासत को संरक्षित करने और पारित करने के अपने कर्तव्य के बारे में पता है। अगली पीढ़ी के लिए वह दिन दूर नहीं जब ऐसे उपकरण केवल संग्रहालयों में ही मिलेंगे।

नृत्य और संगीत के अलावा कई अन्य शिल्प जैसे बांस का काम, लंगड़ा कला आदि भी जीवित रहने के लिए संघर्ष कर रहे हैं। आरसीसी संरचनाओं ने गाय के गोबर से बनी दीवारों की जगह ले ली है जिन्हें "ओकारी" या हाथ की पेंटिंग नामक डिजाइनों के साथ और अधिक सुशोभित किया गया है। प्लास्टिक की वस्तुएं सस्ती, उपलब्ध और लंबे समय तक चलने वाली होने के कारण बांस से बनी चीजों का स्थान ले चुकी हैं। युवा आदिवासी अपने आदिवासी त्योहारों को आधुनिक तरीके से मनाते हैं। बच्चे के जन्म, शादी और किसी व्यक्ति की मृत्यु आदि जैसे विभिन्न अवसरों पर किए जाने वाले संस्कारों को बदल दिया गया है।

निष्कर्ष

इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि विभिन्न शक्तियों के संपर्क में आने के कारण आदिवासी सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से बहुत बदल गए हैं, जिसने उन्हें कई तरह से लाभान्वित किया है, जिससे उनके समुदायों में कई बुराइयाँ भी आई हैं। कई आदिवासी भूमि और जंगलों पर अपने अधिकारों से वंचित हो गए हैं और कई मामलों में उन्हें साहूकारों, बड़े जमींदारों, व्यापारियों, व्यापारियों और अन्य लोगों द्वारा लूटा जा रहा है। इसके बावजूद, हम वेरियर एल्विन जैसे विद्वानों के विचारों का समर्थन नहीं कर सकते जिन्होंने आदिवासियों को आंशिक या पूर्ण अलगाव में रखने की वकालत की। वेरियर एल्विन ने दृढ़ता से सलाह दी कि इन लोगों को यथासंभव अपने पारंपरिक और मूल आदिवासी जीवन को बनाए रखने की अनुमति दी जानी चाहिए। जबकि हम नहीं चाहते कि आदिवासी संस्कृति नष्ट हो, साथ ही हम यह नहीं चाहते कि जनजातियाँ 'पिछड़ी' रहें और औद्योगिक विकास, व्यावसायिक गतिशीलता, शिक्षा और कल्याणकारी योजनाओं के लाभों से लाभान्वित न हों। आदिवासियों के अलगाव ने उन्हें सदियों से गरीबी, अशिक्षा, शोषण का शिकार बनाया है। उन्हें इस दुःस्वप्न अनुभव से बाहर आने का पूरा अधिकार है। समाज के शिक्षित और जागरूक वर्ग के लिए यह आवश्यक है कि समय की आवश्यकता के अनुसार संशोधनों द्वारा पारंपरिक विरासत को संरक्षित किया जाए जिससे समाज में सामाजिक और नैतिक मूल्यों पर होने वाली क्षति को कम किया जा सके। अगर कुछ समर्पित शोधकर्ता न होते तो आदिवासी लोक संस्कृति बहुत पहले ही मर जाती।

संदर्भ ग्रन्थ–

1. Karotemprel, S. (1984). 'The Impact of Christianity on the Tribes of Northeast India' in The Changing Phases of Tribal Area of Manipur, Edited by G. K. Gori, BR Publishing Corporation, Delhi.
2. Majhi, Anit Srivastava, (2010). Tribal Culture Continuity and Change: A Study of Bhills in Rajasthan, Mittal Publications.
3. Ranjit Prakashsingh, (1998). Personality of Tribal and Non-Tribal School Children, Discovery Publishing House, New Delhi.
4. Verrier Elwin, (1964). The Tribal World of Verrier Elwin, Oxford University Press, London.
5. Limart, E.M., (1954). "Alcolhal and the North West Indian in Culture and Society", University of California Publication, Vol 2.
6. Plant, B.S., (1995). "Some Traditional Alcohalic Beven and Thier Importance in Indegenous Atvican Communities", in Process at the Society, Vol. 14.
7. Seyers, W.C., (1956). "Ritual Drinking Ethnic Status and Inbriety in Rural Colubia" in Quarterly Journal of Studies on Alcohal, Vol. 17.
8. Bateman, G.D., (1956). "Drinking Pattern of the Aleuts", Quarterly Journal of Studies on Alcohal, Vol. 17.
9. Gouldwin, T., (1959). "Morris, E. Opters Concepts of Themes", American Anthropologist, VOl. 49.
10. Mandelbaum, D.G., (1970), "Alcohol and Culture", in Ishan Ali and Wayne Dennls (eds.) Cross Culture Studies of Behaviour, New York, Holt Rinehort & Winston.
11. Leacock, S., "Alcoholism Symosium", Editorial Review in American Anthropologist.
12. Spindler, G.D., (1964). "Alcohalism Symposium", Editorial Review in American Anthropologist, Vol. 66.
13. Maclean, (1965). "Traditional Medicine and Its Practitioners in Ibadan Nigreria", Journal of Tropical Medicine and Hyeiene.
14. Kumar, N. Maitra, A.K., (1975). "Reproductive Performances of Tharu Woman",The Eastern Anthropologist, Vol. 28, No. 4.
15. Mariott, M., (1955). "Western Medicine in a Village of North India Health in Culture and Community, B.D. Paul (ed). Russel Sage, New York.

भारत में इस्लामी नारीवाद एवं मुस्लिम महिला अधिकार

हयात अहमद
शोध छात्र, समाजशास्त्र विभाग
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सार संक्षेप

इस्लामी नारीवाद को अकादमिक और मीडिया में समान रूप से बहुत अधिक ध्यान दिया जाता है। यद्यपि यह मूल रूप से एक विमर्श है जिसकी रणनीति मुख्य रूप से लिपि से संबंधित है। इस्लामी नारीवाद को एक अंतरराष्ट्रीय सामाजिक या राजनीतिक आंदोलन के लिए एक विचारधारा के साथ समान करने की एक स्पष्ट प्रवृत्ति है। भारत के संबंध में इस्लामी नारीवाद के बढ़ते प्रभाव और संदर्भ को केवल समर्थकों के एक अलग समूह या विशेष रूप से एक आंदोलन से नहीं जोड़ा जा सकता है। इस्लामी नारीवाद को एक विवादास्पद आंदोलन के रूप में और विशिष्ट स्थानीय, राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय सामाजिक और राजनीतिक आंदोलनों के बीच स्पष्ट अंतर किया जाना चाहिए। इस्लामी नारीवादी आंदोलन के भीतर वैचारिक विभाजन और उस विशाल क्षमता पर ध्यान केंद्रित किया जा सकता है जो स्पष्ट रूप से मुस्लिम महिलाओं के संगठन के साथ–साथ सामान्य रूप से कार्य करते है।

मुख्य शब्द
मुस्लिम महिलाओं के अधिकार, मुस्लिम पर्सनल लॉ, कानूनी अधिकार ।

प्रस्तावना

कुछ समय के लिए, दुनिया भर में कई मुसलमानों के अपने धर्म के प्रामाणिक स्रोतों की ओर नए सिरे से उन्मुखीकरण को एक पश्चिमी–विरोधी हठधर्मिता या कठोर इस्लाम की वैधता के लिए एक कथित खोज के साथ जोड़ा गया है। यह जरूरी नहीं है कि इसके पीछे का एजेंडा भारत में हाल के घटनाक्रमों को देखने पर बहुत स्पष्ट हो जाता है। भारी राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक चुनौतियों का सामना करते हुए, भारत में अधिक से अधिक सक्रिय मुसलमान इस्लामी परंपरा की नई व्याख्या में संलग्न हैं, जो उनके लिए एक आधुनिक राष्ट्र–राज्य के नागरिक के रूप में बहुसंख्यक समुदाय या समाज की ओर पुल बनाने में मदद कर सकता है। यह प्रयास मुस्लिम बुद्धिजीवियों के एक छोटे से अल्पसंख्यक तक ही सीमित नहीं है, उदाहरण के लिए, भारत में नए उभरते मुस्लिम मध्यम वर्गों द्वारा पूरे देश में कई जमीनी आंदोलनों द्वारा इसका समर्थन किया गया है। कोई यह भी तर्क दे सकता है कि शिक्षा, सुधार, भारतीय मुसलमानों के राजनीतिक प्रतिनिधित्व और मुस्लिम महिलाओं की कानूनी और सामाजिक स्थिति जैसे ज्वलंत प्रश्नों की चर्चा ने हाल ही में भारत में एक नए सार्वजनिक क्षेत्र का उदय किया है। जिसके परिणामस्वरूप अंतरराष्ट्रीय/राष्ट्रीय या स्थानीय मुस्लिम जनता से जुड़ा हुआ है ।

जैसा कि सिकंद बताते हैं, इस नए मुस्लिम सार्वजनिक क्षेत्र की भाषा अंग्रेजी है, न कि उर्दू, जो एक कारण यह हो सकता है कि अब तक अकादमिक समुदाय द्वारा इस पर किसी का ध्यान नहीं गया है, क्योंकि उर्दू को अभी भी कई लोगों द्वारा पसंदीदा भाषा के रूप में माना जाता है। स्थानीय, राष्ट्रीय और अंतरराष्ट्रीय स्थानों में इन नए मुस्लिम अभिनेताओं का तर्क है कि विश्वास करने वाले मुसलमान कुरान को समझने के लिए धार्मिक अधिकारियों पर निर्भर नहीं हैं, बल्कि यह कि वे अपने लिए कुरान को पढ़ और समझ सकते

हैं। इस प्रकार, इस्लाम के भीतर अन्य समकालीन सुधार आंदोलनों की तरह, उनके प्रयासों को स्थानीय, राष्ट्रीय और वैश्विक स्तर पर धार्मिक अधिकार के कथित संकट के साथ–साथ (राजनीतिक) प्रतिनिधित्व के संकट के जवाब के रूप में देखा जा सकता है ।

विशेष रूप से भारत के संबंध में, इस विवेचनात्मक आंदोलन पर अब तक अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। यह भारत में उभरते मुस्लिम महिला अधिकार आंदोलन के संबंध में भी सच है, जो 1980 के दशक (मुस्लिम पर्सनल लॉ) में भारत में मुसलमानों के लिए धर्म–आधारित व्यक्तिगत कानूनों पर विवाद के बाद सामने आया था। अपने प्रारंभिक चरण की तुलना में यह मुक्ति आंदोलन इस्लामी नारीवाद के वैश्विक प्रवचन द्वारा सूचित और बहुत प्रेरित है, जिसने 1990 के दशक में गति प्राप्त की। इसलिए मुस्लिम पर्सनल लॉ के भीतर लैंगिक अन्यायपूर्ण कानूनों में सुधार का उनका दावा जरूरी नहीं कि भारतीय संविधान या मानव अधिकारों के सार्वभौमिक सिद्धांत पर आधारित हो, बल्कि कुरान के अधिकार पर सबसे महत्वपूर्ण है। इस्लामी नारीवाद का केंद्रीय तर्क यह है कि कुरान महिलाओं को कई अधिकारों की गारंटी देता है जो प्रचलित पितृसत्तात्मक व्याख्याओं के परिणामस्वरूप उन्हें लगातार वंचित किया जाता है ।

इस्लामी नारीवादः प्रवचन या सामाजिक आंदोलन

मोघदम के अनुसार, इस्लामी नारीवाद सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण एक विमर्श है जिसकी रणनीति और अभ्यास मुख्य रूप से लिपि से संबंधित है। फिर भी, पर्यवेक्षकों के बीच इस विवादास्पद रणनीति या अभ्यास को एक विचारधारा के साथ समान करने के लिए एक स्पष्ट प्रवृत्ति प्रतीत होती है जो एक अंतरराष्ट्रीय सामाजिक या राजनीतिक आंदोलन उत्पन्न करती है या उत्पन्न करने की उम्मीद है। जैसा कि इस्लामी नारीवाद के आलोचकों का कहना है कि इस्लामी नारीवादी आंदोलन वैचारिक विभाजन के साथ सामना कर रहा है, इस्लामी नारीवादियों और विभाजनों के बीच एक कमजोर अंतर्संबंध आंतरिक संघर्ष है जो आंदोलन को समग्र रूप से कमजोर करता है। ये अवलोकन स्पष्ट रूप से इस्लामी नारीवाद पर आधारित कमोबेश सुसंगत, एकवचन आंदोलन के विचार पर आधारित हैं ।

भारतीय संदर्भ में, इस्लामी नारीवाद के हालिया उद्भव को एक विवेकपूर्ण व्यवहार के रूप में समझा जा सकता है जिसे महिला अधिकार कार्यकर्ताओं द्वारा अनुकूलित किया गया है, जो कई मामलों में, पहले से ही स्थानीय या क्षेत्रीय स्तर से जुड़े हुए हैं। राष्ट्रीय महिला आंदोलन और संगठन जैसे जमात–ए–इस्लामी हिंद (श्रष्) के भीतर कई सुधार देखे गये है जैसा कि हम भारत और अन्य जगहों पर देख सकते हैं। इसलिए एक अंतरराष्ट्रीय सामाजिक या राजनीतिक आंदोलन के लिए एक विचारधारा या श्रेणी के रूप में इस्लामी नारीवाद की अवधारणा के बजाय, इसे यहां एक विवादास्पद आंदोलन या रणनीति माना जाता है जिसे कुछ अभिनेताओं द्वारा विशिष्ट और स्थानीय संदर्भों के लिए अनुकूलित किया जाता है। इस तर्क की पुष्टि इस तथ्य से होती है कि कई मुस्लिम महिला अधिकार कार्यकर्ता जो इस प्रवचन को आकर्षित करती हैं, वे कभी भी नारीवादी या इस्लामी नारीवादी के लेबल को स्वीकार नहीं करेंगी क्योंकि गैर–पश्चिमी संदर्भों में इसका अभी भी नकारात्मक या अस्पष्ट अर्थ है।

ऐतिहासिक आख्यानों में मुस्लिम महिलाओं की अनुपस्थिति

कुछ समय पहले तक, पर्यवेक्षक इस बात से बिल्कुल भी आश्वस्त नहीं थे कि भारत में इस्लामी नारीवाद कभी प्रकाश में आएगा। उदाहरण के लिए, असगर अली इंजीनियर (2008) और जरीना भट्टी (2003) की नजर में, भारत में एक इस्लामी लिंग समालोचना के लंबे समय से अतिदेय होने के लिए दो आवश्यक पूर्व शर्त गायब थीं। पहला, लैंगिक समानता पर आधारित कुरान की व्याख्या और, दूसरा, महिलाओं और लिंग अध्ययन में मुस्लिम महिलाओं को शामिल करना ।

जैसा कि ताहेरा आफताब (2008) ने अपनी आधारभूत ग्रंथ सूची Inscribing south Asian Muslim women an annotated bibliography and research में तर्क दिया है कि दक्षिण एशिया में मुस्लिम महिलाओं के इतिहास और समकालीन स्थिति पर अध्ययन आम तौर पर दुर्लभ हैं। आफताब के अनुसार, दक्षिण एशियाई मुस्लिम महिलाओं को आम तौर पर उनके धर्म के "उत्पीड़ित", "पिछड़े" और "दोहरे अत्याचार के शिकार" के रूप में और विशेष रूप से दक्षिण एशियाई पितृसत्ता के रूप में दर्शाया जाता है जो स्त्रीत्व के पारंपरिक हिंदू दृष्टिकोण पर आधारित है ।

गेल मिनॉल्ट (1998), बारबरा मेटकाफ (1990) और अजरा असगर अली (2000) जैसे इतिहासकारों ने दिखाया कि मुस्लिम महिलाओं और पुरुषों ने समान रूप से मौजूदा महिलाओं के अधिकारों की नई व्याख्या के लिए लगातार प्रयास किया है। उनमें से 20वीं और 21वीं सदी के कई प्रख्यात लेखक और कवयित्री थे, जैसे कि इस्मत चुगताई, कुर्रतुलैन हैदर, जिलानी बानो वर्तमान में, तमिल लेखक और कवि सलमा, तेलुगु कवि शाजहाना और उर्दू कवि एवं सामाजिक कार्यकर्ता जमीला निशात की काव्य आवाज़ें न केवल भारत में बल्कि दक्षिण एशिया में भी लोगो ध्यान आकर्षित कर रही हैं परन्तु फिर भी उनकी रूढ़िवादिता बनी रहती है। जैसा कि भारत की सबसे अधिक बिकने वाली अंग्रेजी भाषा की इस्लामिक पत्रिका इस्लामिक वॉयस (बैंगलोर) के संपादक निगार अताउल्ला कहते हैं, भारतीय संदर्भ में जब भी कोई मुस्लिम महिलाओं की स्थिति की बात करता है, तो ध्यान हमेशा बदनामी के कुख्यात रूप पर पड़ता है जिसे जाना जाता है। ट्रिपल तलाक के रूप में बहुविवाह और घूंघट के सवाल पर हैं। उनके अवलोकन की पुष्टि भारत में मुस्लिम अल्पसंख्यक की धारणा पर एक अध्ययन से होती है। विशेष रूप से जब अन्य संप्रदायों की महिलाओं की तुलना में, मुस्लिम महिलाओं को विनम्र नाजुक और अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए बहुत कमजोर माना जाता है ।

भारत में मुसलमानों को अभी भी एक स्पष्ट समुदाय के रूप में देखा जाता है जो अपने धर्म की अंतर्निहित प्रकृति से अपनी विशिष्टता प्राप्त करता है। एक ओर, इस परिप्रेक्ष्य में यह अनदेखी की जाती है कि, भारतीय समाज के सदस्यों के रूप में, भारतीय मुसलमान स्वाभाविक रूप से आबादी के किसी भी अन्य वर्ग की तरह आर्थिक परिवर्तन, राष्ट्र–निर्माण और धर्मनिरपेक्षता की प्रक्रियाओं में शामिल हैं। दूसरी ओर, राज्य की भूमिका की अक्सर उपेक्षा की जाती है, विशेषकर राज्य और समाज में पितृसत्तात्मक संरचनाओं के बीच संबंधों के संबंध में। हालाँकि, भारतीय राज्य हमेशा परिवार और निजी क्षेत्र की परिभाषा और निर्माण में सक्रिय रूप से शामिल रहा है ।

भारत में धर्मनिरपेक्ष महिला आंदोलन

इस सवाल को लेकर लंबा विवाद कि क्या धार्मिक परिवार कानून लोकतंत्र, राष्ट्रीय एकता और भारतीय समाज की प्रगति में बाधा बनते हैं इस सम्बन्ध में 1980 के दशक के मध्य में शाह बानो मामले का हवाला दिया। तलाकशुदा मुस्लिम पत्नियों के लिए भरण–पोषण के घोर विवादित का प्रश्न, हिंदू राष्ट्रवादी अभिनेताओं द्वारा शोषण किया गया, जिन्होंने भारतीय संविधान द्वारा परिकल्पित समान नागरिक संहिता द्वारा मौजूदा धर्म आधारित व्यक्तिगत कानूनों के प्रतिस्थापन का आह्वान किया। बहस के दौरान, यह स्पष्ट हो गया कि "धर्मनिरपेक्ष" नागरिक संहिता वास्तव में पहले से मौजूद हिंदू संहिता के समान होगी, क्योंकि इस बहस के संदर्भ में हिंदू राष्ट्रवाद के प्रतिनिधियों के लिए धर्मनिरपेक्षता का अर्थ "एक हिंदू में धर्मनिरपेक्षता" था। मुस्लिम समूह और व्यक्ति जिन्होंने अपने सांस्कृतिक अधिकारों के एक अभिन्न अंग के रूप में मुस्लिम पर्सनल लॉ को बनाए रखने के लिए तर्क दिया, उन्हें बाद में न केवल "पिछड़ा" और "गलत" के रूप में चिन्हित किया गया, बल्कि भारतीय समाज में "राष्ट्र–विरोधी" के रूप में पेश किया गया। इस सवाल के बारे

में बढ़ते ध्रुवीकरण का सामना करते हुए, प्रधान मंत्री राजीव गांधी के नेतृत्व वाली कांग्रेस सरकार ने 1986 में तथाकथित मुस्लिम महिला (तलाक पर संरक्षण के अधिकार) विधेयक को जल्दबाजी में अपनाया। इस कानून को अपनाकर भारतीय राज्य ने 1980 के दशक से मुस्लिम महिलाओं द्वारा धर्मनिरपेक्ष अधिकार क्षेत्र के तहत भरण–पोषण प्राप्त करने के बार–बार प्रयास को भी समाप्त कर दिया ।

धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र–राज्य के संबंध में प्रारंभिक संदेह 1980 के दशक के मध्य से धर्मनिरपेक्षता की सामान्य आलोचना के संदर्भ में सामने आया। इस समालोचना के बाद, संभ्रांतवादी धारणा यह थी कि सामाजिक परिवर्तन और प्रगति राष्ट्र–निर्माण की प्रक्रिया में निहित है। हिंदू राष्ट्रवादी अभिनेताओं द्वारा एक व्यापक नागरिक कानून संहिता के लिए अपने दावे के विनियोग का सामना करते हुए, शाह बानो मामले के बाद ये संदेह और मजबूत हो गए। विशेष रूप से प्रसिद्ध महिला अधिकार कार्यकर्ताओं जैसे मधु किश्वर और फ्लाविया एग्नेस की आलोचना इस संदर्भ में बहुत महत्वपूर्ण थी। राज्य के साथ मोहभंग और यह अहसास कि हिंदू राष्ट्रवादी अभिनेताओं ने कमोबेश एक वास्तविक नारीवादी मांग को जब्त कर लिया था, इस एजेंडे से नारीवादी अभिनेताओं का अलगाव बढ़ गया। इसके परिणामस्वरूप, एक समान नागरिक संहिता के दावे को वर्तमान में भारत में प्रमुख महिला संगठनों द्वारा समर्थित नहीं किया जा रहा है यह एक बहस का मुद्दा बना हुआ है ।

मुस्लिम महिला अधिकार सक्रियता और कानूनी सुधार के लिए संघर्ष

वटुक (2008) का वर्णन है कि मुस्लिम महिलाओं के नेतृत्व में सबसे बड़े और सबसे प्रसिद्ध संगठन आवाज–ए–निस्वान (एईएन) की मुख्य गतिविधियां गरीब महिलाओं की व्यावसायिक शिक्षा पर ध्यान केंद्रित करती हैं ताकि उन्हें सक्षम बनाया जा सके अर्थात अपना और अपने बच्चों का जीवन यापन कर सके। इसके अलावा, एईएन साप्ताहिक आधार पर विवाह परामर्श प्रदान करता है। ये सेवाएं केवल मुस्लिम महिलाओं के लिए ही उपलब्ध नहीं हैं। न ही जिस तरीके से यह परामर्श दिया जाता है वह किसी विशिष्ट मुस्लिम परंपरा का उल्लेख करता है, बल्कि यह एक ऐसे आधार का अनुसरण करता है जो वाटुक के अनुसार भारत में नारीवादी या महिला गैर सरकारी संगठनों की दुनिया के लिए बहुत विशिष्ट है ।

इन जमीनी पहलों के लिए राष्ट्रीय और यहां तक कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर मुस्लिम महिला संगठनों का बढ़ता सहयोग एक हालिया घटना प्रतीत होती है। इन नए संदर्भों में व्यक्तिगत महिलाओं की मदद पर इतना ध्यान नहीं दिया जाता है, बल्कि मुस्लिम समुदाय के भीतर विशेष रूप से उलमा के साथ बातचीत पर ध्यान केंद्रित किया जाता है। जैसा कि पहले उल्लेख किया गया है, मीडिया अभियान और जनसंपर्क रणनीतियाँ सक्रियता के इस स्तर पर महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उदाहरण के लिए, जब बड़े सम्मेलनों में प्रस्ताव पारित किए जाते हैं तो उन्हें तुरंत प्रेस को भेज दिया जाता है और साक्षात्कार भागीदारों को उपलब्ध कराया जाता है। ये संगठन और नेटवर्क अक्सर धर्मनिरपेक्ष महिला संगठनों के सहयोग से प्रदर्शनों का समन्वय करते हैं, और वे ग्रामीण क्षेत्रों या शहरी झुग्गियों में गरीब महिलाओं के लिए तथाकथित कानूनी जागरूकता शिविरों के साथ–साथ तथाकथित "महिला विरोधी फतवों" के खिलाफ विरोध कार्रवाई का आयोजन करते हैं ।

अखिल भारतीय मुस्लिम महिला अधिकार नेटवर्क जिसकी स्थापना 1999 में ।मछ और मुंबई स्थित महिला अनुसंधान और कार्य समूह के कार्यकर्ताओं द्वारा की गई थी, एक राष्ट्रव्यापी दायरे के साथ सबसे सफल नेटवर्क है। हर एक या दो साल में वे सम्मेलन आयोजित करते हैं, जो एक ही समय में उन सभी संगठनों के लिए एक बैठक बिंदु के रूप में कार्य करते हैं जो इस नेटवर्क में सक्रिय हैं। उदाहरण के लिए, 2005 में, लगभग 300 प्रतिनिधियों ने लखनऊ में मुलाकात की और महिलाओं के अधिकारों के संबंध में राज्य की

भूमिका, मुस्लिम महिलाओं पर सांप्रदायिक हिंसा के प्रभाव और भारत में मुस्लिम महिला अधिकार कार्यकर्ताओं के सामने आने वाली चुनौतियों जैसे सवालों पर चर्चा की।

इस्लामी' समूहों के भीतर इस्लामी नारीवाद

जेआईएच जैसे इस्लामी या "इस्लामी" संगठन इस्लाम के प्रामाणिक स्रोतों में सबसे मजबूत समर्थकों में से थे। इस्लामी नारीवाद का विमर्श भी धर्मग्रंथों के स्रोतों की व्याख्या पर आधारित है, हालांकि स्पष्ट रूप से पितृसत्तात्मक या नव–पितृसत्तात्मक दृष्टिकोण से नहीं, बल्कि लैंगिक न्याय के दृष्टिकोण से। और यही कारण है कि इस्लामिक नारीवाद को ज़िबा मीर–होसैनी द्वारा "राजनीतिक इस्लाम की अवांछित संतान" कहा गया है। इसलिए यदि इस्लामी नारीवाद राजनीतिक इस्लाम के अनपेक्षित दुष्परिणामों में से एक है, जैसा कि मीर–होसैनी जैसे इस प्रवचन के सिद्धांतकारों का तर्क है, एक नारीवादी कुरानिक व्याख्याशास्त्र निश्चित रूप से इस्लामी या "इस्लामी" समूहों जैसे जमात के भीतर से उभरने की उम्मीद की जा सकती है। और वास्तव में, कुछ सबूत प्रतीत होते हैं कि ऐसा विकास वास्तव में जेआईएच के अंदर भी हो रहा है। उदाहरण के लिए, जब फरवरी 2006 में जेआईएच की महिला विंग के लगभग 30000 अनुयायी हैदराबाद में एकत्र हुए, तो इस उपसंगठन की अध्यक्ष नसीरा खानम को यह कहते हुए उद्धृत किया गयाः "इस्लाम महिलाओं के अधिकारों की सुरक्षा की वकालत करता है, लेकिन पुरुषवादी समाज तथ्यों को छुपाता है। महिलाओं को स्वयं अपने अधिकारों के बारे में पता होना चाहिए और इनकार करने पर उन्हें छीनना सीखना चाहिए। उसी अवसर पर, राज्य जमात प्रमुख अब्दुल बासित अनवर द्वारा यह घोषणा की गई थी कि संगठन विभिन्न मुद्दों को उठाने के लिए महिला सदस्यों को बड़े पैमाने पर नामांकित करेगा। वटुक (2008) के आकलन के विपरीत, अहमद (2008) इस प्रश्न पर एक बहुत अलग दृष्टिकोण प्रस्तुत करते है। अहमद इस्लामी नारीवाद की अवधारणा को एक विश्लेषणात्मक श्रेणी के रूप में प्रस्तुत करते है जिसे वह "भारत में इस्लामी समूहों के भीतर परिवर्तनकारी आंदोलन" कहते है। उनके विचार में यह अवधारणा 1979 में मौदुदी की मृत्यु के बाद के वर्षों में विशेष रूप से मजबूत हुई, और इसे आलोचनात्मक आवाजों के उद्भव और एक नई पीढ़ी ने मजबूत किया जिसने मौदुदी की "नव–पितृसत्तात्मक और स्त्री विरोधी विचारधारा" पर सवाल उठाना शुरू कर दिया ।

1990 के दशक में, ये आवाजें आखिरकार इतनी मजबूत हो गई थीं कि उन्होंने एक नई आलोचनात्मक भाषा गढ़ी थी जिसे इस्लामी नारीवाद के रूप में माना जा सकता था। इस प्रकार, यह स्पष्ट हो जाता है कि भारत में इस्लामी नारीवाद के अंतरराष्ट्रीय विमर्श की स्थानीय गतिशीलता कुछ अप्रत्याशित विशेषताओं को प्रदर्शित करती है जिन्हें अब तक ध्यान में नहीं रखा गया है और निश्चित रूप से अधिक विस्तार से विश्लेषण करने की आवश्यकता है। हालाँकि, मेरा तर्क है कि भारत में इस्लामी नारीवाद पर आगे के शोध की अवधारणा विशेष रूप से "राष्ट्रीय" स्तर पर होनी चाहिए।

निष्कर्ष

भारत में इस्लामी नारीवाद पर अब तक जो भी साहित्य प्रकाशित हुआ है, उससे ऐसा लगता है कि सैद्धान्तिक–वैचारिक स्तर पर दोहरी दुविधा स्वयं को प्रकट करती है। सबसे पहले यह ध्यान में रखा जाना चाहिए कि कई सामाजिक कलाकार जो "इस्लामी नारीवादी" श्रेणी के अंतर्गत आते हैं, जरूरी नहीं कि वे इस लेबल को अपने लिए स्वीकार करें, और यह न केवल भारत के संबंध में बल्कि मुस्लिम महिला अधिकार कार्यकर्ताओं के लिए भी सच है। और दूसरी बात, मैं यह तर्क दूंगा कि इस्लामी नारीवाद के बीच एक स्पष्ट अंतर किया जाना चाहिए, एक विवादास्पद आंदोलन के रूप में जिसकी रणनीति और अभ्यास सबसे पहले और सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथों पर आधारित है, और स्थानीय, राष्ट्रीय या अंतरराष्ट्रीय आंदोलन जो अब इस

विवेकपूर्ण अभ्यास का उपयोग कर रहे हैं, लेकिन कई मामलों में वास्तव में 1990 के दशक में इस्लामी नारीवाद के उदय से पहले इस अंतर को बनाने से, विश्लेषण का ध्यान एक कल्पित, विलक्षण इस्लामी नारीवादी आंदोलन के भीतर "वैचारिक विभाजन और "एकजुट करने की क्षमता" पर ध्यान केंद्रित करने के लिए स्थानांतरित किया जा सकता है।

इस महत्वपूर्ण अंतर के बावजूद, यह एक निर्विवाद तथ्य है कि इस्लामी नारीवाद एक प्रवचन और रणनीति के रूप में भारत में विभिन्न समूहों और संदर्भों के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण संदर्भ बिंदु बन गया है। कुछ समय के लिए, भारत में मुस्लिम पर्सनल लॉ के ढांचे के भीतर लैंगिक समानता की उपलब्धि निश्चित रूप से अभी तक पहुंच में नहीं है, और विशेष रूप से उलेमा को यह समझाने का थकाऊ प्रयास कि लिंग–न्यायिक अधिकार एक अनिवार्यता है। फरवरी 2005 में अखिल भारतीय मुस्लिम महिला पर्सनल लॉ बोर्ड (एआईएमडब्ल्यूपीएलबी) की स्थापना के बाद से, जिसने भारत और उसके बाहर मीडिया का ध्यान अत्यधिक आकर्षित किया, इसे अब शायद ही नजरअंदाज किया जा सकता है कि भारत में मुस्लिम महिलाओं की संख्या तेजी से बढ़ रही है। नए उभरते मुस्लिम सार्वजनिक क्षेत्र में अपने कई पुरुष समकक्षों की तरह, वे विश्वास करने वाले मुसलमानों को कुरान को पढ़ने और व्याख्या करने के लिए प्रोत्साहित करते हैं और आज के जीवन की पूर्वापेक्षाओं के अनुसार अपने धार्मिक विश्वास को लाने के नए तरीके खोजने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। और शायद इससे भी अधिक स्पष्ट, मुस्लिम महिलाओं का तर्क है कि मुस्लिम अल्पसंख्यक का "आधुनिकीकरण" और भविष्य समुदाय के भीतर लैंगिक समानता की उपलब्धि और बहुसंख्यक समुदाय द्वारा मुस्लिम महिलाओं को सक्रिय भारतीय नागरिक के रूप में मान्यता पर निर्भर करता है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची–

1. Eickelman, Dale F./Anderson, Jon W. (1999). Redefining Muslim Publics. In (id.)(eds.): New Media in the Muslim World: The Emerging Public Sphere. Bloomington, India.
2. Sikand, Yoginder (2006). Muslims in India since 1947. Islamic perspectives on inter-faith relations. London: Routledge.
3. Moghissi, Haideh (1999). Feminism and Islamic Fundamentalism: The Limits of Postmodern Analysis. London: Zed Press
4. Moghadam, Valentine M. (2007). Qu'est-ce que le féminisme musulman? Pour la promotion d'un changement culturel en faveur de l'égalité des genres. In Islam et laïcité (ed.). Existe-t-il un féminisme musulman? Paris: L'Harmattan.
5. Aftab, Tahera (2008). Inscribing South Asian Muslim Women: an annotated bibliography & research guide. Leiden: Brill.
6. Kidwai, Sabina (2003). Images of Muslim women: a study on the representation of Muslim women in the media, 1985-2001. New Delhi: WISCOMP.

7. Chhachhi, Amrita (1999). Forced Identities: the State, Communalism, Fundamentalism and Women in India. In Deniz Kandiyoti (ed.): Women, Islam & the State. Basingstoke. Hampshire: Macmillan.
8. Mojab, Shahrzad (2001). theorizing the politics of 'islamic feminism'. feminist review, 69, Issue 1, 124-146.
9. Hasan, Zoya (1999). Secularism, Legal Reform and Gender Justice in India. In: Katja Füllberg-Stolberg et al. (eds.): Dissociation and Appropriation: Responses to Globalization in Asia and Africa. Berlin.
10. Vatuk, Sylvia (2008). Islamic Feminism in India: Indian Muslim Women Activists and the Reform of Muslim Personal Law. Modern Asian Studies: Islamic Reform in South Asia, Vol. 42, No 2-3, 489-518.
11. Engineer Asghar Ali (2005). Fatwas their acceptability and their relevance.Sabrang Retrieved from http://www.sabrang.com/news/2005/asgarali.htm.
12. Ahmed-Ghosh, Huma (2008). Dilemmas of Islamic and Secular Feminists and Feminisms. Journal of International Women's Studies. Vol. 9, No 3, May 2008, 99-116,

ग्रामीण युवाओं में पर्यावरणीय जागरुकताः एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

ऋद्धीशा
शोध छात्रा (समाजशास्त्र)
म0गां0का0वि0, वाराणसी

सारांश

वर्तमान परिदृश्य का अवलोकन संदिग्ध रूप से हमें यह बताता है कि प्रकृति के प्रति हमारा व्यवहार कदापि संतुलित नहीं रहा है। वन प्रदेश का क्षेत्र बहुत घटा है। भूमि खनन, व्यापारिक संस्थानों के उत्सर्जन, पृथ्वी तल की विशेष चिंता के बिना विकास के नाम पर अनियमित सड़कों के निर्माण, जल ऊर्जा के नाम पर नदियों का कुप्रबंधन, अदूरदर्शी बांधों के निर्माण, कोयला खनन, असीमित पेट्रोलियम पदार्थों का प्रयोग, इन सारे असंवेदनशील व्यवहारों को देखते हुए कठिनाई से भी यह विचार व्यक्त करने की हिम्मत नहीं होती कि युवा वर्ग पर्यावरण के प्रति जागरूक भी है।

पर्यावरण संपूर्ण पृथ्वी पर सबसे महत्वपूर्ण एवं ज्वलंत मुद्दा है मानव ही नहीं बल्कि संपूर्ण जीव जगत के अस्तित्व को बनाए रखने के लिए पर्यावरणीय संवेदनशीलता महत्वपूर्ण है। एक बार संयुक्त राष्ट्र संघ महासचिव बान की मून ने वैश्विक तापमान वृद्धि पर चिंता व्यक्त करते हुए इसे युद्ध से भी अधिक खतरनाक बताया था।

पर्यावरण पर युवाओं की भागीदारी तभी सुनिश्चित हो सकती है जब युवा वर्ग इसे भली–भांति समझें। इसके लिए सबसे पहले युवक को साक्षर होकर अपने समस्त ग्रामीण जनों को एक गोष्ठी, संगोष्ठी, पंचायत में आपस में विचार विमर्श करना होगा जिसमें हर प्रकार से उनको समझाया जाए। युवा ही हमारे समाज के कर्णधार हैं। भविष्य उन्हीं के कंधों में सुरक्षित है, पुरानी पीढ़ी का दायित्व है कि वह युवा पीढ़ी का मार्गदर्शन करें। अपने कल्याण एवं देश की प्रगति की दिशा में युवा वर्ग का पहला शुभ कदम पर्यावरण सुधार कर, पर्यावरण प्राकृतिक संतुलन को बराबर बनाए रखना होगा।

मुख्य शब्द – पर्यावरण, वन, पारिस्थितिकी तंत्र, ग्रामीण, जागरूकता

पर्यावरण विकृति ने आज वैश्विक रूप धारण कर लिया है। इसका मूल कारण है पारिस्थितिकी तथा वन विनाश। हरे वन ही पर्यावरण की धुरी हैं। प्रकृति देती है, क्षमा करती है तथा संयम के उल्लंघन पर विकराल भी हो जाती है। आज के पर्यावरणीय दृष्टि से अशिक्षित मानव ने कानन हनन तो किया पर पोषण नहीं किया और फलस्वरूप ''वन संसाधन असीमित है'' की मान्यता समाप्त हो गयी। आज तो वन व वनकर्मी दोनों ही 'गोल के डी' में सिकुड़ कर अपने–अपने अस्तित्व की येन केन प्रकारेण रक्षा कर रहे हैं। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में वनों की पर्यावरणी उपादेयता, संवर्धनता तथा प्रबन्धन की जानकारी अनिवार्य हो गयी।

मानव आज भोगवादी संस्कृति में पूर्णतया लिप्त है। सुख सुविधाओं के लिये वह प्रकृति प्रदत्त संसाधनों का विदोहन ही नहीं, विवेकहीन शोषण भी कर रहा है और परिणाम स्वरूप पर्यावरण विकृति सुरसा के मुंह की भांति विकराल होती जा रही है। पर्यावरण संतुलन को बनाये रखने में अब वनों की भूमिका को भी अधिक महत्व दिया जाने लगा है।

यदि हम मानव सभ्यता के उद्भव की ओर दृष्टिपात करें तो पाते हैं कि समूचे संसार में नगर ऐसे ही स्थानों पर पनपे, जहां नैसर्गिक रूप से उर्वरक मृदा और संतुलित वन पारिस्थितिकी तंत्र विद्यमान थे। यदि नगर उपलब्ध संसाधनों से ज्यादा बड़े हो जाते हैं तो उनका विघटन प्रारम्भ हो जाता है। अतः स्पष्ट है कि संसाधन–श्रोत के दुरूपयोग अथवा समाप्त होने से नगर नष्ट हो जाते हैं। यह वैज्ञानिक तथ्य है कि 'पारिस्थितिकीय क्षय' का कुचक्र वन विनाश से ही शुरू होता है। 'वृक्ष नष्ट करो, सभ्यता नष्ट करो' की अवधारणा बेबीलोन, मेसोपोटेमिया की सभ्यता विलीन होने से परिलक्षित होती है।

समृद्धशाली एथेन्स व स्पार्टा नगरों का चौथी शताब्दी में हरे भरे वनों के ह्रास से अन्ततोगत्वा अस्तित्व ही समाप्त हो गया। आज के तथाकथित विकास के परिणाम स्वरूप मानव भूमण्डल पर शनैः शनैः

वृक्ष विहीन चन्द्रलोक का निर्माण किया जा रहा है। अरावली पर्वतमाला की वन सम्पदा बर्बाद कर, राजस्थान भी पर्यावरणीय संकट से उबरने में समुचित मात्रा में वनों की उपादेयता को आवश्यक समझने लगा है।

वन हमारी संस्कृति के अभिन्न अंग रहे हैं। हमारे ऋषियों मुनियों ने मानव जीवन के जटिल पहलुओं का अध्ययन, वनों की सुरम्य तथा एकान्त भूमि में ही कर उनका समाधान सुझाया है। वृक्षों को अनावश्यक न काटा जावे, इसके लिए उन्हें धार्मिक महत्व भी दिया गया। वृक्षों को पूजनीय माना गया है। उनमें देवों का वास दर्शाया गया है। वृक्षों से प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष या परोक्ष लाभ मिलते हैं। पर्यावरण शब्द का व्युत्पत्तिजन्य है– परि+आ+वृ+ल्युद+सुँ पारित आवरणं पर्यावरणं।

अर्थात चारों ओर से जो घेराव है, वही पर्यावरण है। दूसरे शब्दों में मनुष्य आदि प्राणियों तथा वृक्ष–वनस्पतियों के चारों ओर पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश नामक पांच महाभूतों एवं मनुष्य, पशु, पक्षी आदि विविध जीवों की अवस्थिति है, वही हम सबका समष्टि गत पर्यावरण है। इसमें पार्थिव, जलीय, वायवीय, आग्नेय या सौर, सामाजिक, धार्मिक, भोजपान सम्बन्धी, चारित्रिक आदि सभी प्रकार के पर्यावरणों का समावेश हो जाता है।

आदि काल से ही प्रकृति एवं भारतीय संस्कृति का अटूट संबंध रहा है। वनों से ही हमारी संस्कृति उपजी, पनपी और विकसित हुई। संभवतः यह भी एक कारण था कि वर्तमान औद्योगिक क्रान्ति से पूर्व भारत में प्रकृति दोहन या प्रकृति पर विजय पाने का विचार भारतवासियों के मन में नहीं उपजा। वन हमारे लिए कभी भी मात्र जड़ पदार्थ नहीं थे। उन्हें हमेशा सजीव प्राकृतिक तत्व के रूप में सम्मान दिया गया। परन्तु आज मानव उनके प्रति संवेदनशील नहीं रहा। हमारी वेदवाणी नक्कारखाने की तूती साबित हो रही है तथा प्रकृति को लूटने–खसोटने की होड़ मची हुई है।

साहित्य का पुनरावलोकन

सुंदरलाल बहुगुणा ने अपनी 68 पृष्ठ की पुस्तक "पर्यावरण और विकास" में सबके लिए खाद्य सुरक्षा एक लुभावना सपना, हिमालय पर आसन्न संकट और देश के तीन खतरे, उत्तराखंड –समस्या और संभावनाओं का नया प्रदेश, बाढ़ विकास के मंदिर या विनाश के कब्रगाह के संदर्भ में पर्यावरण की व्याख्या की है। **चंद्र प्रकाश शुक्ला** ने अपने 542 पृष्ठ की पुस्तक "पर्यावरण अध्ययन" में चर्चा की है वैदिक साहित्य के बाद के ग्रंथों, महाकाव्य एवं स्मृति ग्रंथों में पर्यावरण समस्या भयावहता के दर्शन नहीं होते तत्कालीन मानव आसपास के पर्यावरण के प्रति जागरूक रहता था। **विनय कुमार** ने अपने 253 पृष्ठ की पुस्तक "पर्यावरणीय समस्याएं और समाधान" में पर्यावरण संतुलन तथा पर्यावरण अवनयन की चर्चा की है। पर्यावरण अवक्रमण से पारिस्थितिक तंत्र की गुणवत्ता में कमी आती है तथा निर्वाणीकरण के कारण उत्पन्न विभिन्न परिणाम एवं जैविक व अजैविक संगठनों के माध्यम से पर्यावरण का निर्माण होता है। पर्यावरण और प्रदूषण के मुद्दे पर पाठकों में जागरूकता पैदा करने के लिए 190 पृष्ठों में **योगेश कुमार गोयल** ने अपनी पुस्तक "प्रदूषण मुक्त सांसे" में बाढ़, पिघलते ग्लेशियर, वृक्षों के महत्व, पर्यावरण हितैषी ऊर्जा स्रोतों, जंगल की आग, जैव विविधता के संकट तथा माउंट एवरेस्ट के प्रदूषण पर विस्तृत चर्चा की गई है। **डॉ राजेंद्र कुमार दुबे** ने अपने 496 पृष्ठ की पुस्तक "प्रकृति, पर्यावरण और वृक्षारोपण –परंपरा, समस्या और समाधान" के प्रथम खंड में प्रकृति मनोरमा और जैव विविधता की जानकारी दी गई है। दूसरे खंड में पर्यावरण के विभिन्न प्रदूषण का वर्णन विस्तार में किया गया है।तीसरे खंड में वृक्षारोपण पर बड़ी महत्वपूर्ण जानकारी दी गई है जो कि समस्या का एकमात्र समाधान है। पर्यावरण प्रदूषण की सभी समस्याओं के निवारण के लिए वृक्षारोपण कौन सा हो और किस प्रकार हो की जानकारी प्रमुखता से दी गई है।

उद्देश्य :

युवा लोगों की संवेदनशीलता और जागरूकता की परख कि वे पर्यावरण और उसको ठीक बनाये रखने के मुख्य घटक वन के प्रति कितने जागरूक व सजग हैं।

शोध प्रारूप :

शोध प्रारूप वैज्ञानिक अनुसंधान उपक्रम का अभिन्न अंग होता है। शोध प्रारूप की रचना विश्वसनीय व वैध आकड़ों के संकलन में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। शोध प्रारूप अन्वेषण की एक योजना, संरचना तथा व्यूह रचना होती है। जिसके आधार पर नियन्त्रण स्थापित किया जाता है। शोध योजना के अंतर्गत समस्या का निरूपण, अध्ययन के क्षेत्र, परिकल्पना करना तथा प्राप्त होने वाले आकड़ों का विश्लेषण करना सम्मिलित रहता है।

क्षेत्र का चुनाव :

वन तथा पर्यावरण विषय के संदर्भ में शोध कार्य के अध्ययन के लिये वाराणसी जनपद को चयनित किया गया है।

समग्र का निर्धारण एवं निदर्शन का चुनाव :

जनपद में वन तथा पर्यावरण की लोगों में जागरूकता के लिए सरल दैव निदर्शन प्रणाली का प्रयोग किया गया है। इस विधि में इकाइयों का चुनाव इस प्रकार किया जाता है कि प्रत्येक इकाई को चुने जाने का समान अवसर मिलता है। इस पद्धति द्वारा निदर्शन चुनने पर किसी भी इकाई का चुना जाना पूर्णतः संयोग पर निर्भर करता है। इसमें किसी प्रकार का पक्षपातपूर्ण विचार या पूर्वाग्रह नहीं होता है। सरल दैव निदर्शन में यह मान्यता है कि समग्र जितना बड़ा होगा इकाईयों के चुनाव में उतनी ही परिशुद्धता होगी क्योंकि समग्र छोटा रहने पर ऐसी संभावना बनी रहती है कि निदर्शन प्रतिनिधित्व पूर्ण नहीं हो पायेगा।

तथ्य संकलन की विधि :

प्रस्तुत शोध में तथ्य संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। इस अनुसूची का लाभ यह है कि इसमें शोधकर्ता उत्तरदाता के प्रत्यक्ष सम्पर्क में होता है तथा शोधकर्ता के द्वारा किये गये प्रश्नों पर उत्तरदाता के प्रत्यक्ष सम्पर्क में होता है तथा शोधकर्ता के द्वारा किये गये प्रश्नों पर उत्तरदाता के सही प्रतिक्रियाओं और उत्तरों को जानने में सफलता मिलती है। शोधकर्ता उत्तरदाता द्वारा दिये गये प्रश्नों के उत्तरों की अनुसूची में निर्धारित स्थान पर अंकित कर देता है।

तथ्य संकलन के स्रोत :

प्रस्तुत शोधकार्य हेतु प्राथमिक व द्वितीयक दोनों प्रकार के तथ्यों का संकलन किया गया है–

1. **प्राथमिक स्रोत :** प्राथमिक स्रोतों से तथ्य संकलन करने के लिये साक्षात्कार अनुसूची विधि का प्रयोग किया गया है। तथ्य संकलन के लिए तथ्यों का वर्गीकरण एवं सारणीयन किया गया तत्पश्चात सांख्यिकीय विश्लेषण आवृति तथा प्रतिशत निकाल कर किया गया।
2. **द्वितीयक स्रोत :** इस अध्ययन में प्राथमिक स्रोतों के साथ द्वितीयक स्रोतों को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसमें मुख्य रूप से पुस्तक, पत्रिकाएं, रिपोर्ट, लेख, समाचार पत्र, इन्टरनेट इत्यादि के माध्यम से तथ्यों का संकलन किया गया है।

उपकरण :

प्रस्तुत शोध में तथ्य संकलन के लिए साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग किया गया है। इस अनुसूची में कुल प्रश्नों की संख्या 16 है। ये प्रत्येक वर्ग के छात्र–छात्राओं से पूछे गये है जिससे कि अध्ययन की वस्तुनिष्ठता बनी रहे।

संकलित तथ्यों का विश्लेषण :

साक्षात्कार अनुसूची से जो तथ्य संकलित किए गये हैं वे अत्यधिक एवं बिखरे हुए थे। अतः उन्हें व्यवस्थित रूप देने के लिए सर्वप्रथम तथ्यों का मास्टर सीट तैयार किया गया तथा उसके पश्चात तथ्यों का विश्लेषण कर विभिन्न सांख्यिकी विधियों का उपयोग किया गया है।

आंकड़ा संकलन

सारणी संख्या–1 :

क्या आप वन के बारे में जानते हैं ?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	50	100
2.	नहीं	–	–
3.	आंशिक	–	–
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 100 प्रतिशत युवा वन के बारे में जातने हैं।

सारणी संख्या–2 :

क्या आप पर्यावरण के बारे में जानते हैं ?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	50	100
2.	नहीं	–	–
3.	आंशिक	–	–
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 100 प्रतिशत युवा पर्यावरण के बारे में जातने हैं।

सारणी संख्या–3 :

सरकारी आकड़ों के अनुसार वाराणसी में 195 हेक्टेयर क्षेत्रफल पर 4.72 लाख रोपित किये गये हैं, आपने वन विभाग द्वारा रोपित पौधे कहीं देखें?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	20	40
2.	नहीं	10	20
3.	आंशिक	20	40
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 40 प्रतिशत लोग वन विभाग द्वारा रोपित पौधे देखे हैं 20 प्रतिशत ने नहीं देखे एवं 40 प्रतिशत आंशिक रूप से देखे हैं।

सारणी संख्या–4 :

वाराणसी में जल प्रदूषण दूर करने के उपाय हुये हैं ?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	15	30
2.	नहीं	15	30

3.	आंशिक	20	40
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 30 प्रतिशत युवा मानते हैं कि वाराणसी में जल प्रदूषण दूर करने के उपाय हुये हैं जबकि 30 प्रतिशत नहीं मानते हैं।

सारणी संख्या–5 :

वाराणसी में प्राकृतिक भू–जल स्तर बहुत नीचे चला गया है?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	30	60
2.	नहीं	5	10
3.	आंशिक	15	30
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 60 प्रतिशत युवा मानते हैं कि वाराणसी में प्राकृतिक भू–जल स्तर बहुत नीचे चला गया है जबकि 10 प्रतिशत नहीं और 30 प्रतिशत आंशिक रूप से सहमत हैं।

सारणी संख्या–6 :

ईंधन व चारे के अनियमित प्रयोग ने वनों को बहुत क्षति पहुंचाई हैं ?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	30	60
2.	नहीं	5	10
3.	आंशिक	15	30
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 60 प्रतिशत युवा मानते हैं कि ईंधन व चारे के अनियमित प्रयोग ने वनों को क्षति पहुंचाई है, 5 प्रतिशत नहीं मानते हैं एवं 30 प्रतिशत इसे आंशिक रूप से स्वीकार करते हैं।

सारणी संख्या–7 :

व्यवसायिक इनपुट ने वनों को क्षति पहुंचाई हैं ?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	40	80
2.	नहीं	5	10
3.	आंशिक	5	10
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 80 प्रतिशत लोग व्यवसायिक इनपुट से वनों की क्षति को स्वीकार करते हैं जबकि 5 प्रतिशत नहीं एवं 5 प्रतिशत आंशिक रूप से स्वीकार करते हैं।

सारणी संख्या–8 :

क्या आप जानते और मानते हैं कि जल समस्या के प्रमुख कारण सिंचाई के निमित्त जल का दोहन, सीवेज की दुर्व्यवस्था तथा स्वच्छता का अपर्याप्त प्रबन्ध है?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	45	90
2.	नहीं	—	—
3.	आंशिक	5	10
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 90 प्रतिशत लोग जानते और मानते हैं कि जल समस्या के प्रमुख कारण सिंचाई के निमित्त जल का दोहन, सीवेज की दुर्व्यवस्था तथा स्वच्छता का अपर्याप्त प्रबन्ध है एवं 10 प्रतिशत आंशिक रूप से स्वीकार करते हैं।

सारणी संख्या–9 :

क्या आप जानते हैं कि देहातों में हवा का प्रदूषण जैविक ईंधन के अनुचित प्रयोगों–गोबर, लकड़ी, पत्ते, कोयला आदि के कारण हैं?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	40	80
2.	नहीं	5	10
3.	आंशिक	5	10
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 80 प्रतिशत लोग देहातों में हवा का प्रदूषण जैविक ईंधन के अनुचित प्रयोगों– गोबर, लकड़ी, पत्ते, कोयला आदि के कारण हैं, 10 प्रतिशत नहीं मानते हैं एवं 10 प्रतिशत आंशिक रूप से सहमत हैं।

सारणी संख्या–10 :

भूतल पर जल प्रदूषण और समस्या का कारण घरेलू सीवेज की बुरी स्थिति औद्योगिक अपगामी प्रवाह तथा कृषि के लिये जल का दोहन है?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	40	80
2.	नहीं	—	—
3.	आंशिक	10	20
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 80 प्रतिशत युवा भूतल पर जल प्रदूषण और समस्या का कारण घरेलू सीवेज की बुरी स्थिति औद्योगिक अपगामी प्रवाह तथा कृषि के लिये जल का दोहन है, मानते हैं एवं 20 प्रतिशत आंशिक रूप से मानते हैं।

सारणी संख्या–11 :

नगरीय परिवेश में हवा का प्रदूषण, परिवहन, बड़े और लघु उद्योग तथा विद्युत उत्पादन के कारणों से हैं?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	30	60
2.	नहीं	10	20
3.	आंशिक	10	20
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि नगरीय परिवेश में हवा के प्रदूषण का कारण 60 प्रतिशत लोगों के विचार से परिवहन, बड़े और लघु उद्योग तथा विद्युत उत्पादन है, जबकि 20 प्रतिशत लोग इसे आंशिक रूप से ही स्वीकार करते हैं।

सारणी संख्या–12 :

घरों तथा व्यावसायिक संस्थानों से निकलने वाला कचरा पर्यावरण के लिये गम्भीर समस्या है?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	45	90
2.	नहीं	–	–
3.	आंशिक	5	10
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 90 प्रतिशत युवा घरों और व्यावसायिक संस्थानों से निकलने वाले कचरे को पर्यावरण के लिये गम्भीर समस्या मानते हैं, एवं 10 प्रतिशत आंशिक रूप से मानते हैं।

सारणी संख्या–13 :

जैवविविधता तथा वन का क्षरण पर्यावरण के लिए गंभीर संकट है और इसके कारण जनसंख्या वृद्धि, विकासशील गतिविधियां तथा लकड़ी के निमित्त वनों की कटान है?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	35	70
2.	नहीं	5	10
3.	आंशिक	10	20
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि जैवविविधता तथा वन का क्षरण पर्यावरण के लिये गंभीर संकट है और इसके कारण जनसंख्या वृद्धि, विकासशील गतिविधियों तथा लकड़ी के निमित्त वनों की कटान को 70 प्रतिशत मानते हैं एवं 20 प्रतिशत आंशिक रूप से मानते हैं।

सारणी संख्या–14 :

केन्द्रीय सरकार ने वन संरक्षण और पर्यावरण नीति और पहल का अनुगमन करते हुए कुछ नियम और एक्ट्स बनाये हैं, क्या इस बारे में आपको कोई जानकारी है?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	35	70
2.	नहीं	5	10
3.	आंशिक	10	20
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि 70 प्रतिशत लोगों को एक्ट्स की जानकारी है एवं 10 प्रतिशत को नहीं तथा 20 प्रतिशत को आंशिक जानकारी है।

सारणी संख्या–15 :

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा आपरेशन ग्रीन नाम से एक बड़ी योजना लागू की गयी है– क्या यह कथन सत्य है?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	40	80
2.	नहीं	–	–
3.	आंशिक	10	20
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आपरेशन ग्रीन को 80 प्रतिशत जानते हैं, 20 प्रतिशत आंशिक रूप से जानते हैं।

सारणी संख्या–16 :

क्या यह सत्य है कि सरकार ने विभिन्न विभागों को आदेश निर्गत किया है कि उनके द्वारा अधिकृत भवनों के आस–पास की रिक्त भूमि पर वृक्षारोपण के लिये पहल करें?

क्रम संख्या	विवरण	संख्या	प्रतिशत
1.	हाँ	20	40
2.	नहीं	20	40
3.	आंशिक	10	20
	योग	**50**	**100**

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि 40 प्रतिशत लोगों की इसकी जानकारी नहीं है एवं 40 प्रतिशत को है एवं 20 प्रतिशत को आंशिक है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोधक्रम में यह तो उजागर हुआ कि संसूचना के स्तर पर युवा वर्ग को पर्यावरण और वन से सम्बन्धित बहुतायत जानकारी है। परन्तु आश्चर्यजनक रूप से जहां लोगों को इस बात की समझ है वहीं दूसरी ओर एक ऐसी भयावह समस्या जो न केवल मानव जाति वरन संपूर्ण पृथ्वी अस्तित्व के लिये अंतकारी हो सकती है, उसके प्रति संवेदना का स्तर नीचा है। शोध की एक बड़ी समस्या इस बात को लेकर आई कि जानकारी देने में लोग कितने निष्पक्ष और ईमानदार हैं। 70 प्रतिशत युवा बताते हैं कि उन्हें सामाजिक वानिकी के बारे में पता है वहीं मात्र 40 प्रतिशत युवा ही हैं, जिन्होंने वन विभाग द्वारा रोपित पौधे देखे। यह विरोधाभास जहां सत्यनिष्ठा को संशय के कठघरे में खड़ा कर सकता है, वहीं एक दमकती हुई आशा कि किरण प्रत्येक युवा की दृढ़ भावना भी है कि उसे यह बिल्कुल गंवारा नहीं कि वह समाज की हितचिन्ता, उसके प्रति समर्पण और मानवीय मूल्यों के प्रति जागरूकता तथा उसके लिये किये जाने वाले कार्यों में किसी से पीछे समझा जाय। अतएव कुल मिलाकर आवश्यकता है–यथोचित विज्ञापन, प्रचार–प्रसार तथा उत्तरदायित्वशील राजनीतिक, सामाजिक तथा सरकारी निकायों एवं कर्मचारियों द्वारा ईमानदार कर्तव्य निर्वहन की।

सुझाव :

1. सामाजिक वानिकी के बारे में लोगों को जानकारी दी जानी चाहिये।
2. वन विभाग द्वारा रोपित पौधों की संख्या में वृद्धि तथा जनसहभागिता।
3. जल प्रदूषण दूर करने के उपाय हो।
4. पीपल तथा शमी वृक्ष अत्यधिक मात्रा में लगवायें जायें।
5. सीवेज की दुर्व्यवस्था सही कर स्वच्छता का पर्याप्त प्रबन्ध किया जाये।
6. देहातों में जैविक ईंधन का समुचित प्रयोग होना चाहिये।
7. घरों तथा व्यवसायिक संस्थानों से निकलने वाले कचरों के निस्तारण का समुचित प्रबन्ध हो।
8. बायोमेडिकल वेस्ट के लिए कूड़ा निस्तारण की सही प्रक्रिया अपनायी जाये।
9. वनों की अंधाधुन कटाई पर रोक लगायी जाये तथा वृक्षारोपण के लिए युवाओं को प्रोत्साहित किया जाये।
10. केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकार द्वारा बनाये गये नियमों का दृढ़ता पूर्वक पालन किया जाये और करवाया जाये।
11. युवाओं को फार्म वानिकी एवं एग्रो वानिकी के बारे में जानकारी दी जाये।
12. अधिकृत भवनों के आस–पास अन्य खाली जगहों पर वृक्षरोपण करें।
13. प्रदूषण करने वाले वाहनों को रोकने के लिये अधिक दृढ़ कदम उठाया जाये।
14. वन संरक्षण या प्रबन्धन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिये समुदायों, बस्तियों का पर्याप्त प्रोत्साहित किया जाये।

सन्दर्भग्रन्थ–सूची

1. सक्सेना, वी.एस.(2019)–पर्यावरण परीक्षण एवं वानिकी, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पृष्ठ 382
2. मिश्रा, पं0 नित्यानन्द एवं पाण्डेय, शिवचरण (2011)–पर्यावरण संस्कृति प्रदूषण एवं संरक्षण, अल्मोड़ा बुक डिपो
3. तिवारी, दीनानाथ (2019) पर्यावरण, सतत विकास एवं जीवन, प्रभात प्रकाशन, पृष्ठ 242
4. सिंह, अजय एवं सिंह सुरेन्द्र (2020) पर्यावरण एवं समाज, विवेक प्रकाशन, दिल्ली
5. दूबे, राजेन्द्र कुमार (2014) प्रकृति, पर्यावरण और वृक्षारोपण– परम्परा, समस्या व समाधान, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, पृष्ठ 496
6. बहुगुणा, सुन्दर लाल (2013) पर्यावरण और विकास, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, पृष्ठ 68
7. शुक्ल चन्द्र प्रकाश (2019) पर्यावरण अध्ययन रचना प्रकाशन, जयपुर, पृष्ठ 542
8. भारत (2014) सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
9. योजना
10. कुरूक्षेत्र
11. प्रतियोगिता दर्पण
12. दृष्टि– पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी

High-Performance Work System, Self-Efficacy and Employees' Health

Dr. Vandana Gupta
Assistant Professor,
Dept. of Psychology,
MMV, BHU. Varanasi.
Emil: gupta.van209@gmail.com

Abstract

Self-efficacy is an individual's belief that they have ability to do the things. It is work as a motivation for individual. Individual high in self-efficacy cope very effectively to adverse situation. Such individuals enjoy demanding work and utilize every opportunity to their development. Literature within strategic human resource management revealed controversial findings related to impact of HPWS on employees' health. Controversy is on the question whether the SHRM systems are equally benefiting the employees, or, are the employees being unduly taxed by the high work pressure and work-intensification leading to their job-dissatisfaction and poorer health? The present study has examined the effect of HR policies and practices on the employees' health and moderating role of self-efficacy on this relationship was investigated. Findings of present study suggest that moderate implementation of HPWS affect positively the employees' health. Result further indicates that individual high in self-efficacy show greater health in high implementation perception of HPWS.

Keyword: Employee health, Self-efficacy, High-performing work system and physical health.

Introduction

High-performance work system (HPWS) is a specific combination of human resource practices, work-structure and processes that maximizes employees' decision-making abilities, knowledge, skills and commitment, and leads to flexibility, innovation and effectiveness in organizations (Kanwal, 2008). There is extensive research on HPWS that has shown that various components of HPWS must be in congruence with each other to gain positive impacts. Most of the authors accept that HPWS comprises high-scope jobs and autonomous teams that enhance employees' discretion and participation in decisions about production, sophisticated recruitment and selection techniques. It also provides training and developmental opportunity which equip workers to utilize their autonomy effectively and enhance their motivation. Various forms of performance – based rewards encourage workers to use their skills and autonomy that enhance production of goods and services. It is argued that these HPW practices mutually reinforce the employees to deliver good performance in organizations.

There are several synonymous words that are used interchangeably to describe such types of integration of strategic human resource management practices, namely, high-involvement work system, high- performing organization, high-commitment management style, etc. Typically the features of HPWS are decision making moved downward as far as possible, extensive use of self-managed teams, compensation systems that link rewards to individual and team performance, wide sharing of information, participative and shared leadership, and extensive training.

Studies on HPWS suggest that this work system helps organization to achieve superior economic performance in terms of enhanced market value per employee, creates values for customers and stakeholders through effective allocation of human resources, promotes operational efficiency, encourages creativity and innovation and motivates greater involvement of employees in the organization. Collectively, these practices are expected to provide a source of sustained competitive advantage to firms when the practices are horizontally matched as a complement to each other and also vertically aligned with the firm's strategy (Huselid, 1995).

Although empirical studies have shown positive results of HPWS on organizational measures, there has been a great debate on how the HPWS practices affect employees. Studies on this issue have reported controversial findings. According to the win-win approach, these HPWS practices are not only helpful in gaining competitive advantage to organizations, but also beneficial in terms of employees' health and well-being. While the mainstream view is that HPWS are beneficial for organizations as well as for employees, an alternative theoretical perspective has developed that challenges the win-win perspective. This perspective suggests that positive benefits from HPWS practices to organizations comes at the expense of individual employees, that results in role overload, burnout, increased pressures for individuals and ultimately poor physical and mental health, increased work-life conflict and job-dissatisfaction. Studies by critics of HPWS have shown that implementation of HPWS indeed has a negative impact on employees' physical and mental health. For example, Brenner et al., (2004) have found a significant positive relationship between cumulative trauma disorders and use of practices such as quality circles, teamwork and just-in-time production. Similar findings were also reported by Kroon et al. (2009). They found negative consequences of innovative management practices (e.g., performance related pay, development and career opportunities, performance evaluation, participation in work, communication and job-design) on employees' well-being i.e., increased job-stress and emotional exhaustion. Similarly, Bockerman et al. (2011) found evidence of short-term sickness absence and workplace accident after implementation of innovative work practices including self-managed teams, information sharing, training, and variable pay system.

Such types of controversies were also reported by Tregaskis, Daniels, Glover, Butler, and Meyer (2013). They found mixed outcomes and suggested that HPWS practices, on one hand, related to higher job-satisfaction and commitment, and on the other hand became the cause of work-intensification e.g., higher workload, pressure by management, and stress among employees. The authors argued that high-performing organizations provide intrinsic and extrinsic rewards and recognition in return of employees' efforts and performance, and if the employees perceive this valuable to them, it is likely that they would be satisfied and overwhelmed at work simultaneously (Nipius & Beijer, 2009). A study by Lee and Ashforht (1993) showed that those who were extremely competitive, committed to work and strong during time urgency, were more likely to be subjected to emotional distress and suffer from stress symptoms.

Self-efficacy is an individual's belief in his or her ability to achieve results in a given situation. Empirically, studies have shown a strong correlation between self-efficacy and

performance. It is generally reported that individuals with higher self-efficacy perceive difficult tasks as meaningful challenges, despite the fact that others may find similar tasks discouraging. Thus, high self-efficacy fosters intrinsic interest and deep engrossment in activities, on the contrary, low self-efficacy may cause people to have low aspirations, slacken their efforts, and give up easily.

Empirical studies on self-efficacy within organizational context show that perceived self-efficacy is an influential determinant of career choice and development. The higher the people's perceived efficacy to fulfill educational requirements and occupational roles, the wider the career options they seriously consider pursuing, the greater the interest they have in them, the better they prepare themselves educationally for different occupational careers, and the greater their staying power in challenging career pursuits, (Lent, Brown, & Hackett, 1994). *Low perceived efficacy employees prefer prescriptive training that tells them how to perform the roles as traditionally structured (Jones, 1986; Saks, 1995) Self-efficacious employees take greater initiative in their occupational self-development and generate ideas that help to improve work processes (Speier & Frese, 1997) Organizations that provide their new employees with guided mastery experiences, effective co-workers as models and performance feedback enhance employees' self-efficacy, emotional well-being, satisfaction and level of productivity (Saks 1994, 1995). Job-enrichment and mutually supportive communication, also build employees' perceived efficacy to take on broader functions and a proactive work role (Parker, 1998)*

Perceived self-efficacy to fulfill occupational demands affects level of stress and physical health of employees. Those of low efficacy are stressed both emotionally and physiologically by perceived overload in which task demands exceed their perceived coping capabilities, whereas those who hold a high belief in their efficacy and that of their group are unfazed by heavy workloads (Jex & Bliese, 1999).

Self-efficacy is the strong motivational belief system that fosters accomplishments in difficult endeavors and yields dividends in motivation, performance attainments, and emotional well-being at work (Bandura, 2000). Studies suggest that people with high self-efficacy in a task are more likely to make more of an effort and persist longer, than those with low efficacy. Therefore, self-efficacy may be a reliable predictor of both work motivation and task performance (Luthans, 1998) and influences personal goal setting (Appelbaum & Hare 1996). The relevance of self-efficacy has also been reported by Williams, Wissing, Rothmann, and Temane (2010), who found that work context with high job demands (overload and job insecurity) and job resources (growth, opportunities, organizational support and advancement) along with generalized self-efficacy significantly predict psychological well-being (positive affect, and satisfaction with life) and engagement (vigor and dedication) of employees.

Studies related to moderation analysis indicate that any effect and relationship between a set of variables are moderated by several organizational and individuals factors. Thus, the present study is an attempt to identify the impact of HPWS on physical and mental health of the employee, and also analyzes the moderating effects of self- on the relationship between HPWS

and employees' health. On the basis of above literature review following objectives and hypotheses have been formulated.

Objectives

1. To examine the effect of HPWS on the employees' physical and mental health.
2. To examine the moderation effect of self-efficacy on the relationship between HPWS and employees' health.

Hypotheses

1. HPWS would affect the employees' physical and mental health.
2. Self-efficacy would moderate the relationship of HPWS and employees' health.

Method

The study was conducted in well-known production organizations 'Mazagon Dock Limited', Mumbai. Mazagon Dock Limited is the India's premier shipyard constructing warship, offshore platforms and associated support vessels for offshore oil drilling. The sample consisted of 226 employees (middle managers and engineers), after excluding 58 data from the final analysis which were enhancing the heterogeneity of the sample. The employees working within the plants were randomly selected for data collection.

Tools of measurement

The following standardized psychometric tools were employed in the present study. All of following tools have already been widely used in research in the area of organizational psychology.

1. **Human Resource Management Practices Scale**: Employees' perception of human resource management practices were measured with 34 item's scale developed by Mendelson, Turner, and Barling (2009). The scale consist 8 HR practices including employment security, selective hiring, teams and decentralized decision making, extensive training, reduced status distinction, contingent compensation, information sharing and transformational leadership. The participants had to give response on 7-point Likert scale (1 = absolutely sure it does not, 2 = pretty sure it does not, 3 = somewhat sure it does not, 4 = not sure if it does or does not, 5 = somewhat sure it does, 6 = pretty sure it does, 7 = absolutely sure it does). Dimension wise scale's reliability is found to be 0.63, 0.69, 0.69, 0.69, 0.15, 0.58, 0.62, 0.94, serially.
2. **General Self-Efficacy Scale (Jerusalem & Schwarzer, 1992):** This is a unidimensional scale with 10-items, recording responses on 4- point scale (1 = Not at all true, 2 = hardly true, 3 = moderately true, 4 = exactly true), that assess a general sense of perceived self-efficacy to predict coping with daily hassles as well as after experiencing all kinds of stressful life events. The alpha-coefficient of the scale ranges between 0.76-0.90. High score on this instrument indicates high sense of general self-efficacy.
3. **General Health Questionnaire**: The scale developed by Goldberg (1978) measures mental health of individuals including: absence of feeing of strain, depression, inability to cope, anxiety based insomnia, lack of confidence, esteem and others symptoms of mental distress. This scale has 12-items and records responses on 4 points scale ranging from

'better than usual' to 'much less than usual'. The higher the score on this scale the poorer the mental health of the individuals. The alpha-coefficient of the scale is ranging from 0.78 to 0.95.

4. **Somatic Health Complaints Scale (Srivastava & Singh, 2009):** This scale has 25 statements regarding various physical ill-health symptoms to be rated at 5 point-Likert scale, ranging from 'strongly disagree' to 'strongly agree'. The scale has 0.86 alpha co-efficient on the sample of graduation students. Some of the symptoms of ill-health are: poor appetite, headache, backaches, muscles cramps, feeling of tiredness, feeling of faintness, etc. Higher scores on this instrument indicate poor physical health.

Results

In order to examine the effects of HPWS on physical health, and mental health, the sample was divided into high, moderate and low HPWS groups on the basis of quartile1(Q1) and quartile3 (Q3). The participants who scored above Q1 and below Q3 were put in moderate group. Further, the three sub – groups were compared with regard to the above mentioned outcome variables by using ANOVA and post-hoc Tukey test. The results obtained through ANOVA and Tukey test are recorded in Tables- 1.

Table -1: Summary of the results of ANOVA for outcome variables for different HPWS groups

Dependent Variables	**Low HPWS Group (n=54)**		**Moderate HPWS Group (n=122)**		**High HPWS Group (n=50)**		**F**
	Mean	SD	Mean	SD	Mean	SD	
Physical Ill-Health	47.28[a]	4.28	41.00[b]	3.88	49.00[c]	3.65	66.476***
Mental Ill-Health	22.52[a]	3.52	22.00[ab]	4.00	24.30[c]	3.05	4.403**

***p<.001; **p<.01

Note: Common superscripts do not show significant difference between the groups.
Superscripts (a b c) = Post hoc Tukey test. a=low group, b=moderate group, c= high group.

Results of ANOVA for physical health (Table-1) indicate that perceived existence of HPWS has a significant effect on participants' physical health. The mean difference on physical ill-health of the three HPWS sub-groups were found to be statistically significant (F=66.476; p<.001), indicating a significant difference among participants' physical ill-health caused by HPW practices in the organization.

The mean score of physical ill-health of the three sub-groups of the employees depicted in Table -1 indicates that the moderate HPWS group has better physical health than low and high HPWS groups. Thus results suggest that implementation of HPW practices at moderate level has a positive effect on employees' physical health than low and high implementation of HPWS practices. Superscripts of physical ill-health also reveal that the three sub-groups of HPWS differ significantly to each other on Physical ill-health outcome.

Results, further (Table – 1) indicate that employees' perception of HPWS has a significant effect on employees' mental health ($F = 4.403$; $p<.01$). The mean scores of the three groups indicate that the moderate HPWS group scored lower on mental ill-health measure than the low and high HPWS groups. Superscripts reveal that the high HPWS group differs significantly from low and moderate HPWS groups, whereas, the difference between the low and moderate HPWS groups was not found to be significant.

Further, in order to examine the relationship of HPWS and its dimensions with physical health, and mental health coefficients of correlation through product movement method was computed. The obtained results are depicted in Tables 2.

Table -2: Correlation between different dimensions of HPWS and Employees' Health and Well- being

Variables	Physical Ill-health	Mental Ill-Health
HPWS Overall	.309**	.148*
Employment Security	-.374**	-.305***
Selective hiring	.175**	.327***
Contingent compensation	.139*	.195**
Extensive Training	.083	-.102
Team and Decentralized Decision	.273**	.251**
Reduced Status Distinction	-.143***	-.256***
Information Sharing	-.154***	-.138**
Transformational Leadership style	.292***	-.162**

***p<.001; **p<.01; *p<.05

Correlation table indicate that physical ill-health negative correlated with employment security, reduced status distinction, and information sharing while positively associated with overall HPWS, selective hiring, contingent compensation, team and decentralized decision making and transformational leadership style. Table further indicates positive correlation of mental ill-health with overall HPWS, selective hiring, contingent component, team and decision making whereas negatively associated with employment security, reduced status distinction, information sharing, and transformational leadership.

To examine the **moderating effect of self-efficacy** on the relationship of HPWS with health, moderation hierarchical regression analysis was run. First, data were converted into z scores through the standardizing process in which each data are divided by the SD (raw score-mean/SD). The two standardized variables were then multiplied to obtain the interaction product. Through this process interaction product of predictor and moderator variables are generated and then hierarchical regression analysis was performed. The obtained results are recorded in Table-3.

Results (Table-3) for physical health suggest that the unstandardized regression coefficient for interaction term is -.735 ($p<.001$). The R^2 change associated with the interaction term is .118, which is statistically significant, indicating that interaction between HPWS and self-

efficacy explained an additional 11.80 % of variance in the physical health scores over and above the 18.60 % explained by the first-order effects of HPWS and self-efficacy alone.

Figure 1 indicates that with high HPWS, high self-efficacy group shows better physical health than the low and moderate self-efficacy groups. It is also evident that the three groups have better physical health in moderate HPWS. Further, the low self-efficacy group shows highest physical ill-health in high HPWS and lowest physical ill- health in low HPWS.

Table – 3: Moderation Regression Analysis of HPWS (predictor) with Physical Ill-Health and Mental Ill-Health (criterion variables): Self-Efficacy as Moderator

Criterion Variables	Predictor and Moderator	B	β	R^2	Adj R^2	$\triangle R^2$	$\triangle$ F
Physical Ill-Health	**Step 1**						
	HPWS	.417	.029	.186	.179	.186	38.529***
	SE	-.326	-.211				
	Step2						
	HPWS*SE	-.735	-.218	.304	.295	.118	25.615***
Mental Ill-Health	**Step 1**						
	HPWS	.088	.080	.025	.016	.025	3.877*
	SE	-.207	-.114				
	Step2						
	HPWS*SE	-.265	-.430	.144	.133	.119	30.845***

Notes. HPWS=High Performance Work System; SE= Self-Efficacy
*p<.05; **p<.01; ***p<.001.

Figure 1: Moderating effect of Self-Efficacy on relationship of HPWS and Physical Ill-Health

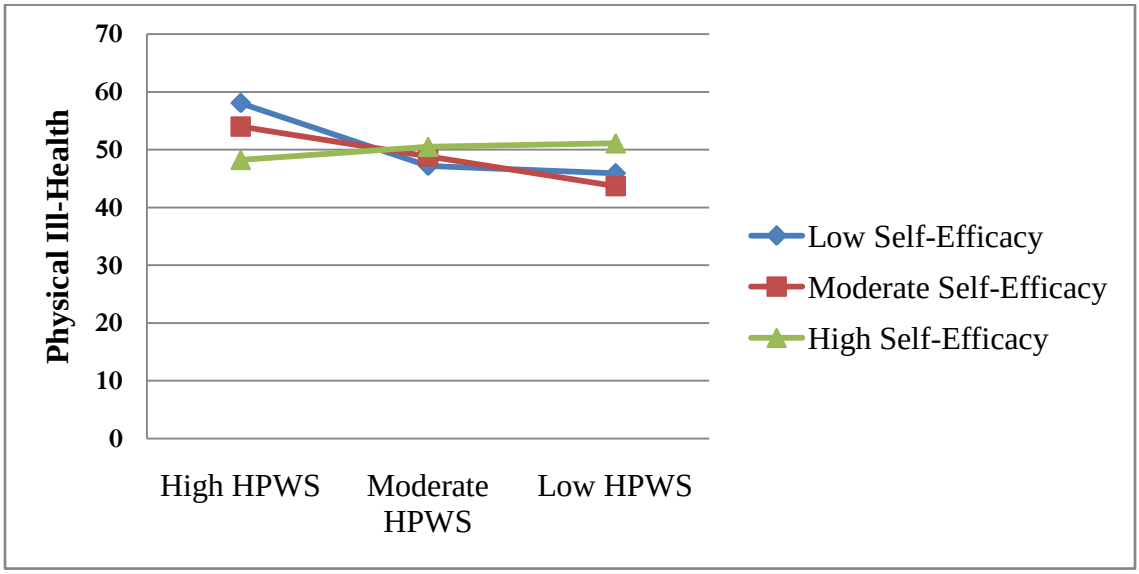

Results of moderation analysis for mental health of participants (Table-3) further indicate that the unstandardized regression coefficient for interaction term is -.265 (p<.001). The R^2 change associated with the interaction term is .119, which is statistically significant, indicating

that interaction between HPWS and self-efficacy explains an additional 11.90 % of variance in the mental health scores of participants over and above the 2.50 % explained by the first-order effects of HPWS and self-efficacy alone.

Figure-2 shows that high self-efficacy group is showing better mental health than low and moderate self-efficacy groups at the high HPWS, whereas, at high HPWS, low self-efficacy group's mental health is poor. Similarly, at the low HPWS, moderate and low self-efficacy groups are showing better mental health than high self-efficacy group.

Figure 2: Moderating effect of Self-Efficacy on relationship of HPWS and Mental Ill-Health

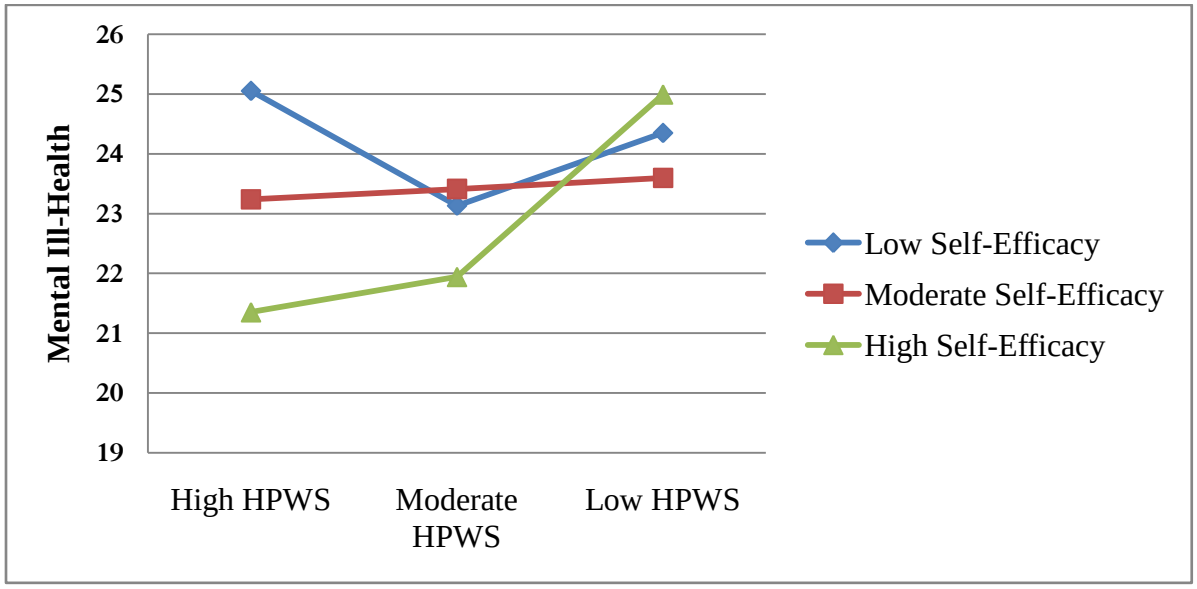

Thus results of moderation analyses, overall, suggest that self-efficacy moderate or mitigate the adverse effects of HPWS on physical and mental health status of employees.

Discussion

The present study made an attempt to examine the extent to which overall as well as different dimensions of HPWS affect employees' health. The various practices included in the present study were employment security, selective hiring, contingent compensation, team and decentralized decision making, extensive training, reduced status distinction, information sharing and transformational leadership style. Further, the moderating effect of self-efficacy on the relationship of HPWS with employees' physical and mental health was also examined.

The results suggest that employees' perception of the extent of implementation of HPWS significantly affects employees' work-life conflict, physical and mental health and job-satisfaction. The study demonstrated that a moderate group of HPWS maintains relatively better work-life balance and health than a high HPWS group.

Results suggested that with increasing perception of high-performance work practices in the organization, employees experienced higher degree of physical and mental ill-health.

Findings of present study supported by other scholars' finding that suggested greater implementation of HPWS at the workplace adversely affects the employees' physical and mental health whereas moderate adoptions of these practices in the organization have positive outcomes

as reflected in reduced physical and mental health problems among the employees. Results of individual HPWS practices indicate that higher perceived existence of employment security, reduced status distinction and information-sharing are positively related to physical and mental health of the participants, whereas, other practices such as selective hiring, contingent compensation, team and decentralized decision-making and transformational leadership were found to be negatively associated with physical and mental health of the employees. Results further suggest that moderate levels of these practices have a positive impact on employees' health and well-being. The findings of the present study are in conformity with the findings of earlier researches in this domain (Godard, 2001; Heffernan & Dundon, 2012; Jenson et al., 2011; Ramsay et al., 2000)

Critics of HPWS argue that at high-performing work place employees are exploited. Any positive impact of HPWS is limited to the management that often obtained at the expense of the employees' health and well-being (Antonioli, et al., 2009; Danford, et al., 2008; Kalleberg, et al., 2009; Wood et al., 2012). The present study's finding is consistent with the findings of these researchers.

Similar findings were also reported by Kroon et al. (2009). They found negative consequences of innovative management practices (e.g., performance related pay, development and career opportunities, performance evaluation, participation in work, communication and job-design) on employees' well-being i.e., increased job-stress and emotional exhaustion. Similarly, Bokerman et al. (2011) found evidence of short-term sickness absence and workplace accident after implementation of innovative work practices including self-managed teams, information sharing, training, and variable pay system.

Finally, the moderating effect of self-efficacy on the relationship of HPWS with physical and mental health was analyzed. The results indicate that self-efficacy of the employees significantly moderates the relationship of HPW practices with employees' physical health, mental health.

It is generally accepted that self-efficacy is a good predictor of many outcomes, including positive emotions, good performance, higher motivation, resilience, low anxiety and stress, depression, frustration, good psychological well-being, higher job-satisfaction, and organizational commitment. Research has revealed that employees with high efficacy beliefs are more motivated towards the workplace even in difficult situation (Bandura, 2008). There is evidence which supports self-efficacy as a form of individual resilience in the organizational context. Studies reveal that high level of self-efficacy is negatively associated with psychological strain (Nauta, Liu, & Li, 2010), depression (Maciejewski, Prigenson, & Mazure, 2000), post-traumatic stress symptoms (Saccinto et al., 2013) and positively associated with organizational commitment (Saleem, et al., 2012), job-satisfaction (Caprara, Barbaranelli, Steca, & Malone, 2006), higher motivation and higher performance (Charian & Jacob, 2013). In contrast, individuals with low self-efficacy are prone to self-doubts and show coping deficiency when confronted with high work demands (Jerusalem & Schwarzer, 1992b).

Studies on the relationship of self-efficacy and health demonstrate that people with high self-efficacy have better well-being than individuals with low self-efficacy beliefs. Most occupational stress models suggest that the relationship between stress and strain is moderated by personal characteristics of the focal person. Various studies have revealed that stressors have a less negative effect when individuals have more positive self-perceptions (Mossholder, Bedein, & Armenakis, 1982).

To sum up, the results of the present study suggest that perceived existence of HPWS significantly correlate with physical health and mental health. The employees who perceive the HPW practices being adopted by organization at a moderate level have better physical and mental health. Results further suggest that self-efficacy noticeably moderates the relationship of HPW practices with physical and mental health.

Although this study made a number of significant contributions to the existing literature, there are several limitations that need to be acknowledged. *First*, the present investigation is cross-sectional in nature. This prevented to us to make reliable conclusions regarding the casual relationships among the variables. *Second*, the present study has focused only on eight high-performing practices (selective hiring, employment security, pay for performance, extensive training, team and decentralized decision making, reduced status distinctions, information sharing and transformational leadership style). There are some other practices (e.g., job-sharing, advanced manufacturing system, job-rotation, use of information and technology) that need to be examined to gain the whole picture of these practices. Third, the sample of the present study is small and taken from only one manufacturing organization. This limits the generalization of the findings to large populations. Forth, in the present study self-efficacy has been studied as moderator of the relationship between HPWS and employees' health and well-being. Other potential moderators, such as, psychological capital, cognitive appraisal, coping style and different other personality characteristics, can be examined in future research.

References -

1. Antonioli, D., Mazzanti, M., & Pini, P. (2009). Innovations, working conditions and industrial relations: Evidence for local production system. *Economic and Industrial Democracy, 30*, 157-181.
2. Appelbaum, H. S., & Hare, A. (1996). Self-efficacy as a mediator of goal setting and performance. *Journals of Managerial Psychology, 11*, 33-47.
3. Bandura, A. (2000). Cultivate self-efficacy for personal and organizational effectiveness. In E. A. Lock (Ed.), *Handbook of principles of organization behavior*. (pp. 120-136). Oxford, UK: Blackwell.
4. Bandura, A. (2008). Toward an agency theory of the self. In H. Marsh, R. G. Craven, &D. M. McInerney (Ed.), *Advances in self research, self-processes, learning, and enabling human potential* (pp. 15-49). Charlotte, N C: Information Age Publishing.
5. Bockerman, P., Johnson, E., & Kauhanen, A. (2011). Innovative work practices andsickness absence: What does a nationally representative employee survey tell? *Industrial and Corporate Change, 21*, 587-613.

6. Brenner, D. M., Fairris, D., & Russer, J. (2004). Flexible work practices and occupational safety and health: Exploring the relationship between cumulative trauma disorders and workplace transformation . *Industrial Relations: A Journal of Economy and Society, 43,* 242-266.
7. Caprara, V. G., Barbaranelli, C., Steca, P., & Malone, S. P. (2006). Teachers' self-efficacy beliefs as determinants of job-satisfaction and students academic achievement: A study at the School level. *Journal of School Psychology, 44*, 473-490.
8. Charian, J., & Jacob, J. (2013). Impact of self-efficacy on motivation and performance of employees. *International Journal of Business and management, 8* (14), 1833- 8119.
9. Danford, A., Richardson, M., Steward, P., Tailby, S., & Upchurch, M. (2008) . Partnership, high-performance work systems and quality of working life. *New Technology, Work, and Employment, 23,* 151-167.
10. Godard, J. (2001). High-performance and the transformation of work? The implications of alternative work practices for the nature and experience of work. *Industrial and Labor Relations Review, 54,* 776–805.
11. Goldberg, D. (1978). *Manual of the GHQ*. UK: NFER Publishing Company.
12. Heffernan, M., & Dundon, T. (2012, July). Researching employee reactions to high performance work-systems in the service sector: The role of organizational justice theory. *The 2012 16th ILERA (IIRA) Word Congress*. Philadelphia, USA.
13. Jensen, M. J., Patel C. P., & Messersmith, G. J. (2011). High performance work-system and employees' well-being. *Journal of Management, 20*, 1-22.
14. Jerusalem, M., & Schwarzer, R. (1992a). The general self-efficacy scale. Retrieved on February 11, 2010 from http://www.docstoc.com/docs/20845960/Efficacy-Scale-1/
15. Jerusalem, M., & Schwarzer, R. (1992b). Self-efficacy as a resource factor in stress appraisal. In R. Schwarzer (Ed.), *Self-efficacy: Thought control of action* (pp. 195216). Washington, DC:Hemisphere.
16. Jex, S. M., & Bliese, P. D. (1999). Efficacy beliefs as a moderator of the impact of work-related stressors: A multilevel study. *Journal of Applied Psychology 84,* 349-361.
17. Jones, G. R. (1986). Socialization tactics, self-efficacy, and newcomers' adjustment to organizations. *Academy of Management Journal, 29*, 262-279.
18. *Kalleberg, L. A., Nesheim, T., & Olsen, M. K. (2009). Is participation good or bad for workers? Effect of autonomy, consultation and teamwork on stress among workers in Norway. Acta Socialogical, 52, 99-116.*
19. Kroon, B**.,** Voorde, V. K., & Veldhoven, V. M. (2009). Cross-level effects of high-performance work practices on burnout: Two counteracting mediating mechanisms compared. *Personnel Review, 38* (5), 509 – 525.

20. Lee, T. R., & Ashforth, E. B. (1993). A further examination of managerial burnout: Toward an integrated model. *Journal of Organizational Behavior, 14* (1), 3–20.
21. Lent, R. W., Brown, S. D., & Hackett, G. (1994). Toward a unifying social cognitive theory of career and academic interest, choice, and performance. *Journal of Vocational Behavior, 45*, 79-122.
22. Luthans, F. (1998). *Organizational behavior* (5th ed.). New York: Mc GrawHill.
23. Maciejewski, K. P., Prigerson, G. H., & Mazure, N. C. (2001). Self-efficacy as a mediator between stressful life events and depressive symptoms. *The British Journal of Psychiatry, 176*, 373-378.
24. Mendelson. B. M., Turner, N., & Barling J. (2009). Perception of the presence and effectiveness of high involvement work system and their relationship to employee attitudes: A test of competing models. Retrieved January, 12, 2010, from http://www.umanitoba.ca/facuties/management/media/Mendelson_et_al_in_press_PR.pdf
25. Mossholder, K.V., Bedein, A. G., & Armenakis, A. A. (1982). *Employees-organization linkages: The psychology of commitment and turnover*. New York: Academic Press.
26. Nauta, M.M., Liu, C., & Li, C. (2010). A cross-national examination of self-efficacy as a moderator of autonomy/job strain relationships. *Applied Psychology: An International Review, 59*, 159179.
27. Nipius, T.P.M., & Beijer, S.E. (2009). *The influence of high commitment HR system on turnover intention at the individual level: A critical view*. (Master Thesis). Tilburg University: Netherland, Tilberg. Retrived on 26 January 2014, from http://arno.uvt.nl/show.cgi?fid=113300
28. Parker, S. K. (1998). Enhancing role breadth self-efficacy: The roles of job enrichment and other organizational interventions. *Journal of Applied Psychology, 83*, 835-852.
29. Ramsey, H. , Scholarios, D., & Harley, B. (2000). Employees and high-performance work systems: Testing inside the black box. *British Journal of IndustrialRelations, 38*, 501-532.
30. Saks, A. M. (1994). Moderating effects of self-efficacy for the relationship between training method and anxiety and stress reactions of newcomers. *Journal of Organizational Behavior, 15*, 639-654.
31. Saks, A. M. (1995). Longitudinal field investigation of the moderating and mediating effects of self-efficacy on the relationship between training and newcomer adjustment. *Journal of Applied Psychology, 80*, 211-225.
32. Saleem, A., Saba, G., & Adnan, A. (2012). Self-efficacy and optimism as predictors of organizational commitment among bank employees. *International Journal of Research Studies in Psychology, 1* (1), 1-10.
33. Speirer, C., & Frese, M. (1997). Generalized self-efficacy as a mediator and moderator between control and complexity at work and personal initiative: A longitudinal field study in EastGermany. *Human Performance, 10* (2), 171-192.

34. Srivastava. U. (1997). *Role of behavioral pattern and social support in stress health relationship among managerial personnel*. (Doctoral Dissertation). Banaras Hindu University: Varanasi.

35. Tregaskis, O., Daniels, K., Glover, L., Butler, P., & Meyer, M. (2013). High performance work practices and firm performance: A longitudinal case study. *British Journal of Management, 24 (2),* 225-244.
36. Williams, A. S., Wissing, P. M., Rothmann, S., & Temane, M. Q. (2010). Self-efficacy, work and psychological outcomes in a public service context. *Journal of Psychology in Africa, 20* (1), 43-52.
37. Wood, S., Veldhoven, V.M., Croon, M., & Menezes, D. M. L. (2012). Enriched job-design, high-involvement, and organizational performance: the mediating roles of job-satisfaction and well-being. *Human Relation, 65*, 419-437.

समकालीन समाज में मदरसों की प्रासंगिकता : एक अध्ययन

शगुफ्ता परवीन
शोध छात्रा, समाजशास्त्र विभाग,
महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

सारांश

मदरसा *एक ऐसे शिक्षण संस्थान के रूप में देखा जा सकता है जहाँ मुस्लिम समुदाय का गरीब तबका जो सामाजिक–आर्थिक, शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है। मदरसा शिक्षा पर निर्भर है क्योंकि मदरसा एक ऐसी दर्सगाह (शिक्षण संस्थान) है जहाँ अत्यधिक न्यूनतम खर्च पर बच्चों को शिक्षा (तालीम) प्रदान की जाती है। मदरसा में तालीम हासिल करना इस्लामिक नजरिए (दृष्टि) से सही माना जाता है।* ***इस्लाम कहता है यह दुनिया तो सिर्फ दिखावे की दुनिया है जिन्दगी जीने का मकसद तो सिर्फ आखिरत (The life after death) के लिए जीना है*** *और यह तभी मुमकिन है जब हम इस्लाम के बताए उसूलों पर चलें और यही सोच मदरसा की अहमियत को बढ़ावा देती है। मुस्लिम समाज के लिए मदरसा काफी अहम है लेकिन वर्तमान समय बदलाव का समय है। सब कुछ बदल रहा हम आधुनिक युग में जी रहे हैं हम फख्र से कह सकते हैं वैश्वीकरण ने पूरी दुनिया को एक सूत्र में बाँध दिया है। टेक्नालॉजी आज आसमान छू रही है। यही एक सवाल जो मदरसा शिक्षा को चिन्हित करता है इस बदलाव की बयार में मदरसा पिछड़ा क्यों है मदरसा को देखकर यही लगता है शायद वक्त यही थम गया है। वहीं जर्जर होती इमारत, पुराने दर्जे सुविधाओं का अभाव ऐसी कितनी ही कमियाँ मदरसा शिक्षा व्यवस्था में देखने को मिलती है मुस्लिम समुदाय शिक्षा के क्षेत्र में पिछड़ता हुआ दिखायी दे रहा है इसका मुख्य कारण है बुनियादी शिक्षा का कमजोर पाया जाना। मदरसों में बुनियादी तालीम तो हासिल हो जाती है लेकिन जमाने के साथ कदम से कदम मिलाकर चलना मुश्किल हो जाता है। सबसे महत्वपूर्ण सवाल मदरसा के साथ जो जुड़ा है वो है रोजगारपरक शिक्षा का अभाव बदलते वक्त के साथ मानसिकता को बदलने की आवश्यकता है किस तरह मदरसा शिक्षा व्यवस्था में बदलाव किया जा सके एवं शिक्षा की मुख्य धारा से जोड़ा जा सके इस शोध का मुख्य उद्देश्य समकालीन समाज के सन्दर्भ में मदरसा की अहमियत को जानना है साथ ही मदरसा शिक्षा व्यवस्था से सम्बन्धित मुख्य समस्याओं को रेखांकित करना है।*

मुख्य शब्द–मदरसा, मदरसा आधुनिकीकरण, सशक्तिकरण, इस्लाम।

प्रस्तावना :

शिक्षा समाज के लिए बेहद अहम है यह सत्य है शिक्षित देश ही विकसित देश है। हमारा संविधान बिना किसी भेदभाव हर जाति मजहब के लोगों को अपनी संस्कृति की सुरक्षा का अधिकार प्रदान करता है। शिक्षा केन्द्र एवं राज्य के समवर्ती सूची के अन्तर्गत आती है। भारत में कई संस्थाएँ हैं जो शिक्षा व्यवस्था को संचालित करती हैं केन्द्र एवं राज्य सरकार के अन्तर्गत संस्थाओं का संचालन किया जाता है इसके अतिरिक्त कुछ धार्मिक संस्थाओं के अन्तर्गत भी शिक्षा का संचालन होता है। मदरसा एक इस्लामिक संस्थान है जहाँ इस्लाम धर्म से संबंधित शिक्षा प्रदान की जाती है। मदरसों का अस्तित्व काफी पुराना है तवारीख बताती है जब से इस्लाम अस्तित्व में आया मदरसा का अस्तित्व तभी से रहा है हमारे **नबी पाक हजरत मोहम्मद सल्लललाह अलैहे वसल्लम** शुरू से ही मस्जिद (इबादतगाह) में इल्म व दीन की तालीम देते थे वहीं से मदरसा इब्तिदा में आया मदीना मुनव्वरा में मस्जिद–ए–नबवी में इल्म व दीन की तालीम दी जाती

थी, अंग्रेजी हुकूमत ने सबसे पहले भारत में मिशिनरी कालेज की स्थापना की वरना एक वक्त था जब मुंशी प्रेमचन्द्र, राजा राम मोहन राय, मौलाना आजाद जैसी शख्सियत ने मदरसों से तालीम हासिल की। उस समय भी धार्मिक शिक्षा के साथ अन्य विषय भी मरसा पाठ्यक्रम का हिस्सा था। अंग्रेजी शासनकाल में मदरसों के अस्तित्व को खत्म करने का प्रयास किया गया मदरसा डिग्री को महज कागजी पन्ना बना दिया गया उस वक्त उलेमाओं ने इसकी मुखालिफत की और आज भी मदरसा अपना अस्तित्व तलाश रहा है। आज भी मदरसों के प्रति सरकार का नाकारात्मक रवैया रहा है सिर्फ वोट बैंक की खातिर हमें इस्तेमाल किया पर हमारी बेहतरी के लिए किया कुछ नहीं।

मदरसा शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन ना के बराबर है। वही पुराना पाठ्यक्रम, वही परम्परागत शिक्षण पद्धति के आधार पर आज भी मदरसों का संचालन हो रहा है। मदरसा आज वहाँ नहीं जहाँ होना चाहिए हम आधुनिक युग में जी रहे हैं पर मदरसों के लिए कुछ भी आधुनिक नहीं वास्तविकता यह है कि आज इन्हीं कमियों के कारण मदरसों को आलोचनात्मक दृष्टिकोण से देखा जा रहा है इसका जिम्मेदार कौन है क्या हम इसके जिम्मेदार हैं या फिर हुकूमत किसने सिर्फ लुभावने वादे किए, पर हमारी बहतरी के लिए किया कुछ नहीं। मदरसा पाठ्यक्रम दरस–ए–निजामी पर आधारित है, प्राचीन समय में यह पाठ्यक्रम उस समय की जरूरियात के हिसाब से बहतर था किंतु बदलते वक्त के साथ बदलाव नहीं हुआ यही मुख्य कमी मदरसा शिक्षा व्यवस्था में है जिसकी वजह से मदरसा अपनी प्रासंगिकता खो रहा है।

यह सत्य है कि बदलते वक्त के साथ सभी चीजें बदलती हैं यही बदलाव शिक्षा के अन्तर्गत पाठ्यक्रम में किया जाता है ताकि बच्चे सामाजिक समस्याओं, चुनौतियों से अवगत हो ज्ञान की वृद्धि हो शिक्षा का मूलमंत्र यही है आत्मनिर्भर बनाना किंतु मदरसा शिक्षा सिर्फ धर्म केन्द्रित होकर रह गयी है। मदरसे के बच्चे बहोत महनत करते हैं पर यह भी सच है कि उन्हें कामयाबी नहीं मिल पाती हमें सोचना होगा किस तरह मदरसा शिक्षा व्यवस्था में बदलाव कर हम मदरसों में अध्ययनरत बच्चों का भविष्य संवार सकते हैं।

अध्ययन का उद्देश्य :

अध्ययन का मुख्य उद्देश्य निम्न है :

- समकालीन समाज के सन्दर्भ में मदरसा शिक्षा व्यवस्था का अध्ययन।
- मुस्लिम समुदाय सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति का आकलन।
- मदरसा आधुनिकीकरण योजना का समीक्षात्मक मूल्यांकन।
- मदरसा शिक्षा व्यवस्था मूल ढाँचा का अध्ययन।
- मदरसों से सम्बन्धित मुख्य समस्याओं का अध्ययन।

मुस्लिम समुदाय सामाजिक आर्थिक शैक्षणिक स्थिति :

आजादी के तकरीबन 60 साल बाद सन् 2005 में तत्कालीन सरकार प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह के कार्यकाल में मुस्लिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति आकलन हेतु सच्चर कमिटी नामक आयोग का गठन किया गया, सच्चर समिति ने अपनी रिपोर्ट के जरिए ऐसे बिंदुओं को उजागर किया जो आज तक अदृश्य थे जिन पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया गया था पहली बार मुस्लिम समुदाय की सामाजिक हैसियत का आकलन किया गया है।

सरकारी नौकरियों में मुस्लिम प्रतिनिधित्व ना के बराबर है कई मामलों में उनकी स्थिति अनुसूचित जाति जनजातियों से भी खराब है। मुस्लिम समुदाय साक्षरता दर काफी कम है, 6 से 14 वर्ष की आयु समूह के एक चौथाई मुस्लिम बच्चे या तो स्कूल नहीं जा पाते या पढ़ाई छोड़ देते हैं। 50 प्रतिशत मुस्लिम

बच्चे ही मिडिल स्कूल पूरा कर पाते हैं एवं 62 प्रतिशत बच्चे माध्यमिक स्तर तक पढ़ पाते हैं। शहरी इलाकों में 60 प्रतिशत मुस्लिम बच्चे, स्कूल कभी गए ही नहीं छोटी उम्र में ही गरीबी के बोझ तले वे अपना बचपन खो रहे हैं जिस उम्र में, सपनों का उड़ान दी जाती है, उस उम्र में कंधों पर जिम्मेदारियों का बोझ दे दिया जाता है।

जनसंख्या				
	मुस्लिम	**देश की कुल आबादी**	**मुस्लिम आबादी प्रतिशत**	
2001	13.81 करोड़	102.8 करोड़	13.43%	
2011	17.22 करोड़	121.08 करोड़	14.2%	
साक्षरता				
	मुस्लिम साक्षरता	**देश की कुल साक्षरता**		
2001	59.1%	64.8%		
2011	68.5%	73.0%		
6–14 वर्ष की आयु वाले ऐसे बच्चे जो कभी स्कूल नहीं गए				
	मुस्लिम बच्चे	**देश के कुल बच्चे**		
2004–05	15.3%	10.2%		
2011–12	8.7%	4.4%		
मदरसों में नामांकित बच्चे				
2001	10.3%			
2011	17.1%			
स्नातकों की संख्या				
	मुस्लिम	**औसत वृद्धि**	**कुल**	**औसत वृद्धि**
2001	23.9 लाख	98.8%	3.76 करोड़	64%
2011	47.52 लाख		6.2 करोड़	

स्रोत– इंडियन एक्सप्रेस

सच्चर रिपोर्ट को जारी हुए तकरीबन 10 साल गुजर चुके हैं पर आज भी मुस्लिम समुदाय की सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक स्थिति में कुछ खास बदलाव दिखा नहीं। क्या मुसलमानों की हालत में सुधार हो पाया है? क्या मुसलमान सामाजिक हैसियत में सुधार हो पाया? शायद नहीं।

शिक्षा की बात करें तो वर्ष 2011 की जनगणना के आंकड़ों के मुताबिक भारत के धार्मिक सम्प्रदायों में निरक्षरता दर मुस्लिमों में (43%) सबसे ज्यादा हैं। मुसलमानों में ग्रेजुएट सबसे कम हैं। 2014, 15 में उच्च शिक्षा पर किए गए **अखिल भारतीय सर्वेक्षण** के अनुसार उच्च शिक्षा के क्षेत्र में नामांकित छात्रों में मुसलमानों की हिस्सेदारी केवल 4.4% ही है लेकिन मुस्लिम समुदाय में ग्रेजुएट स्तर पर 60% बढ़ोत्तरी हुयी है, तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में भी 2001 की तुलना में अग्रणी रहा है सरकारी नौकरी में मुस्लिम प्रतिनिधित्व काफी कम है। सच्चर रिपोर्ट 2006 के मुताबिक कुल 3209 आई0पी0एस0 अधिकारियों में मुस्लिम भागीदारी मात्र 4%, 10 साल बाद 2016 में महज 3.19% ही है।

उपर्युक्त आंकड़ों से साफ जाहिर होता है कि मुस्लिम समुदाय आज भी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़ा हुआ है आखिर इसका जिम्मेदार कौन है? स्वयं मुस्लिम समुदाय की मानसिकता या फिर सरकार द्वारा की जा रही भेदभाव की राजनीति यह आज भी विमर्श का विषय है।

मुस्लिम शिक्षा केन्द्र के रूप में मदरसों की भूमिका :

मुस्लिम समुदाय के लिए मदरसा काफी अहम है। मदरसा की अहमियत का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि मुस्लिम आबादी की अधिकतम जनसंख्या मदरसा शिक्षा पर निर्भर है। चाहे कोई भी तबका गरीब या फिर अमीर इस्लामिक शिक्षा हेतु मदरसा ही एक ऐसा जरिया है जहाँ कम खर्च में इल्म व दीन सिखाया जाता है और सबसे अहम **कुरान** की तिलावत जिसे पढ़ना हर मोमिन का कर्तव्य माना जाता है इस्लामिक नजरिए से मदरसा काफी अहम है इस्लाम के अनुसार प्रत्येक मुस्लिम का परम कर्तव्य है इस्लाम की हदीस को जाने दुनिया में रहकर आखिरत की खातिर जीना सीखे मदरसा ही एक ऐसा संस्थान है जो इल्म व दीन सिखाता है।

इस तथ्य को नकारा नहीं जा सकता कि भारत की कुल आबादी में मुस्लिम आबादी का साक्षरता प्रतिशत काफी कम है लेकिन यह भी सच है कि अधिकतर मुस्लिम आबादी बुनियादी शिक्षा हेतु मदरसा शिक्षा पर निर्भर है जरा सोचें यदि मदरसा का अस्तित्व खत्म कर दिया जाए तब मुस्लिम साक्षरता दर क्या होगी, देश का विकास शिक्षा के विकास पर निर्भर है शिक्षा स्तर में आयी गिरावट इस बात की ओर संकेत करती है कि देश पिछड़ रहा है।

अक्सर कहा जाता है मदरसा धर्म विशेष पर आधारित है यह सिर्फ एक विशेष समुदाय को लाभान्वित करता है इसका होना ना होना देश के लिए मायने नहीं रखता इसके साथ ही अन्य कई दोष मदरसा शिक्षा व्यवस्था पर लगाए जाते रहे हैं, ऐसे कितने ही सवाल हैं जो मदरसा के अस्तित्व पर सवाल उठाते रहे हैं वहीं दूसरी तरफ कितनी ही खूबियाँ हैं जो मदरसा के अहमियत को बढ़ावा देती है। **मदरसा आज भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है सिर्फ जरूरत है तो सहयोग की साकारात्मक पहल की ताकि मदरसा बदल सके।**

मदरसा आधुनिकीकरण योजना :

सन् **1994** में तत्कालीन सरकार द्वारा मदरसा आधुनिकीकरण योजना शुरू हुयी जिसका मुख्य उद्देश्य मदरसा शिक्षा व्यवस्था में आवश्यक बदलाव करना था, वर्तमान समय में भारत में मदरसों की संख्या तकरीबन **35000** से **40000** है। मदरसों को आधुनिक शिक्षा से जोड़ने के लिए सरकार द्वारा मदरसों में आधुनिक विषयों को मदरसा पाठ्यक्रम में जोड़ा गया है साथ ही मदरसा मार्डनाइजेशन योजना के अन्तर्गत मदरसों में मार्डन शिक्षकों की नियुक्ति की गयी जिनका वेतनमान तकरीबन **15,000** रुपए है जिनमें केन्द्र सरकार का अंशदान **12,000** रुपए एवं राज्य सरकार का अंशदान **3000** रुपए है।

मदरसों में अध्ययनरत शिक्षक तकरीबन **54 माह** से अपने वेतन का इंतजार कर रहे हैं उनका कहना है कि साल **2017** के बाद से 1 माह का वेतन भी पूरी तरह से नहीं मिल पाया है मात्र **3000** वेतनमान पर ये अपना गुजर बसर कर रहे हैं। इन आँकड़ों से यह जाहिर होता है कि वास्तविकता एवं दिखावे में काफी अंतर है हम मदरसा शिक्षा व्यवस्था पर सवाल तो करते रहे हैं पर कभी भी वास्तविकता के धरातल पर जानने की कोशिश नहीं करते **मदरसा आधुनिकीकरण योजना मात्र सरकारी पन्नों पर अंकित दिखावा है।**

सूबे में तकरीबन **8,500** मदरसे आधुनिकीकरण योजना के अन्तर्गत अधीन हैं किंतु सच्चाई यह है कि आज इनके पास गुजर–बसर तक के पैसे नहीं। मदरसों में सिर्फ मुस्लिम शिक्षक ही कार्यरत नहीं बल्कि गैर मुस्लिम शिक्षक भी कार्यरत हैं अक्सर मदरसा शिक्षकों को कहा जाता है **ये उस विभाग के मास्टर हैं**

जिस विभाग में वेतन नहीं आता। समाज के **25 लाख** बच्चों को मदरसों में शिक्षा मिलती है फिर भी सरकार का रवैया एकदम निराशाजनक है। मदरसों से जुड़े उलामा मदारिस (शिक्षक) का मानना है कि मदरसों में हमेशा इस्लामिक शिक्षा के साथ आधुनिक विषयों को पढ़ाया जाता रहा है तो फिर मदरसा आधुनिकीकरण की आवश्यकता क्यों इस योजना को लेकर मुस्लिम समुदाय के भीतर कुछ मतभेद रहे हैं जो इस योजना के समर्थक हैं उनका मानना है कि सरकार द्वारा यह एक अच्छी पहल है इसके विपरीत, जो इस योजना के खिलाफ हैं उनका मानना है कि मदरसा आधुनिकीकरण योजना मात्र लुभावना वादा है जबकि असल मक्सद योजना की आड़ में शरीयत में बदलाव करना है। यह योजना कुछ मदरसों में लागू हैं लेकिन कोई सकारात्मक परिणाम दिखाई नहीं देता।

सरकार द्वारा इस योजना के अन्तर्गत सकारात्मक कदम उठाने की आवश्यकता है। मदरसों को मूलभूत सुविधाएँ मुहैया करायें साथ ही मदरसा शिक्षकों के वतन सम्बन्धी समस्या का समाधान करें केवल वादे नहीं बल्कि वास्तविक तौर पर मदरसा शिक्षा व्यवस्था में सुधार की दरकार है।

मदरसा शिक्षा व्यवस्था सम्बन्धित मुख्य समस्यायें :

मदरसा मुस्लिम शिक्षा केन्द्र के रूप में अहम भूमिका निभा रहा है फिर भी कुछ आलोचनाएँ मदरसा शिक्षा व्यवस्था से जुड़ी है साथ ही कुछ समस्यायें मदरसों से सम्बन्धित है। सरकार द्वारा मदरसा आधुनिकीकरण योजना के अन्तर्गत जो भी नीतियाँ लागू हैं वो प्रभावी तौर पर क्रियान्वित नहीं है, यही मुख्य कारण है आज भी मदरसों में मूलभूत सुविधाओं का अभाव देखने को मिलता है कितने मदरसे ऐसे हैं जो आर्थिक तंगी से बंद हो चुके हैं। मदरसों में अध्ययनरत बच्चों का भविष्य क्या है ऐसा नहीं है कि इन बच्चों के सपने नहीं होते यह बात और है कि सुविधाओं के अभाव में इनके सपनों का कोई औचित्य नहीं है। मदरसों में पढ़ रहे बच्चों से जब उनके मुसतकबिल (भविष्य) के बारे में पूछा जाता है कि आप बनना क्या चाहते हैं ऐसा नहीं है कि उनका जवाब अलग होता है। कोई डॉक्टर बनना चाहता है, कोई आफिसर बनना चाहता है, पर कोई आतंकवादी नहीं बनना चाहता। यह दिखाता है कि सपने देखने को अधिकार हर किसी को है। यह और बात है कि सभी के सपने साकार नहीं होते। इस तरह की आलोचना बच्चों के भविष्य के साथ खिलवाड़ है।

सरकार द्वारा मदरसा आधुनिकीकरण योजना को प्रभावी तौर पर लागू करने की आवश्यकता है। मदरसों को मार्डनाइज करने का अर्थ यह नहीं है कि बस कुछ सुविधायें दे दी जाएँ, बल्कि मदरसा मार्डनाइजेशन का अर्थ है मदरसा शिक्षा व्यवस्था के मूल ढाँचे का सम्मान करते हुए मदरसों को आधुनिक शिक्षा से जोड़ा जाए। ताकि हम मदरसों में धार्मिक शिक्षा के साथ ही मूल्यपरक शिक्षा प्रदान कर पाएँ।

- मदरसों में मूलभूत सुविधाओं का अभाव है। कुछ मदरसे बेहतर स्थिति में हैं लेकिन अधिकतर मदरसों में पुरानी परम्परागत शिक्षण पद्धति एवं आर्थिक समस्याएँ हैं।
- मदरसा शिक्षा व्यवस्था में परस्पर एकरूपता का अभाव देखने को मिलता है।
- तकनीकी ज्ञान का अभाव एवं परम्परागत मूल्यांकन प्रणाली मदरसा शिक्षा व्यवस्था में पायी जाती है।
- अधिकतर मदरसों का संचालन जकात के माध्यम से होता है। यह मुख्य कारण है कि मदरसा आज आर्थिक तंगी से जूझ रहा है।

निष्कर्ष :

यह अध्ययन समकालीन समाज में मदरसों की प्रासंगिकता से संबंधित है जिसके अन्तर्गत मदरसा शिक्षा व्यवस्था से संबंधित मुख्य समस्याओं के साथ ही सरकार द्वारा लागू मदरसा आधुनिकीकरण योजना का समीक्षात्मक मूल्यांकन किया गया है।

बेशक मदरसा काफी अहम है, फिर भी बदलते वक्त के साथ मदरसों में बदलाव होना जरूरी है, मदरसों में इस्लामिक शिक्षा के साथ ही मूल्यपरक शिक्षा प्रदान किये जाने की आवश्यकता है। मुस्लिम शिक्षा केन्द्र के रूप में मदरसों की भूमिका को अनदेखा नहीं किया जा सकता क्योंकि मदरसा ऐसे लोगों के लिए शिक्षा का एकमात्र माध्यम है जो समाज में निचले तबके से हैं। मुस्लिम समाज के लिए सांस्कृतिक धरोहर के रूप में मदरसा अपनी भूमिका निभा रहा है।

मदरसा शिक्षा व्यवस्था से संबंधित जितनी भी आलोचनाएँ हैं उन्हें सकारात्मक दिशा देने की आवश्यकता है। सरकार द्वारा मदरसा शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन हेतु सकारात्मक एवं प्रभावी नीतियों को लागू करने की आवश्यकता है। इसके साथ ही मुस्लिम समाज शिक्षा के प्रति जागरूक हो एवं पूरी तरह से सहयोग दें ताकि हम मदरसा शिक्षा व्यवस्था के मूल ढाँचे का सम्मान रखते हुए मॉर्डन शिक्षा को अपनायें एवं देश के विकास में भागीदार बनें।

सन्दर्भ :

1. एहतिशाम, मंजूर, (2011), मदरसा, राजकमल प्रकाशन।
2. Rehman, Abdur, (2012) सच्चर की सिफारिशें, Kashyap Publication
3. International journal of reflective Research in social sciences, Vol. 2, issue 2, 2019, pages 12-14.
4. Journal of research in Humanities and social science, vol. 9, Issue 6, 2021, pp. 86-96.
5. Sachar, Justice, Rajinder (2006), "Social economic and educational status of the muslim community of India", Government of India (Indian Muslim Council).
6. http://www.imass.org.in
7. http://www.education.gov.in
8. http://www.madarsaboard.com
9. http://minoritywelfare.up.gov.in
10. http://madarsaboard.upsdc.gov.in
11. census report 2011

The Opinion V.10, N. 20 J-D 2021 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal

परम्परागत ग्रामीण रीति–रिवाजों एवं धर्म पर नगरीय संस्कृति का प्रभाव

चन्द्रशेखर सिंह
शोध छात्र–समाजशास्त्र विभाग
महात्मा गॉधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी (उ0प्र0)

शोध–सारांश

ग्रामीण सामाजिक संरचना एवं कार्य–शैली में परम्परागत रीति–रिवाजों एवं धर्म का एक महत्वपूर्ण स्थान है। रीति–रिवाज एवं धर्म सामाजिक नियन्त्रण के प्रमुख साधन होते है, जिस समाज में धर्म एवं रीति–रिवाजों का ह्रास होता है वह समाज शीघ्र ही विघटन की अवस्था को प्राप्त कर जाता है। धर्म सामाजिक मूल्यों, विश्वासों एव व्यवहारों को स्थिरता प्रदान करता है तथा आदर्शो को अक्षुणता प्रदान करने में योगदान देता है। बिना नियन्त्रण के एक आदर्श समाज की कल्पना करना असंभावित है। इस प्रकार एक आदर्श समाज के लिए परम्परागत रीति–रिवाज एवं धार्मिक परम्पराओं का संरक्षण करना अति आवश्यक है। जिससे समाज एवं समाज में रहने वाले व्यक्तियों के व्यवहारों का नियन्त्रण एवं मार्ग दर्शन होता रहे। और समाज में संतुलन बना रहें वर्तमान समय में परम्परागत ग्रामीण रीति–रिवाज एवं धर्म तथा आदर्श, मूल्य, विचार सभ्यता, संस्कृति आदि नगरीय संस्कृति से तीव्र गति से प्रभावित है। यही कारण है कि आज लोक संस्कृति संक्रमणशील परिलक्षित हो रही है। नगरीकरण और नगरीय संस्कृति के कारण परम्परागत ग्रामीण रीति–रिवाजों एवं धर्म में आमूलचूल क्रान्ति आई है। नगरीय संस्कृति की चकाचौंध ने ग्रामीण रीति–रिवाजों एवं धार्मिक विश्वासों को एक नयी गति प्रदान की है। यातायात के साधनों तथा दूर संचार के साधनों ने नगर एवं गॉव की दूरी को अति समीप कर दिया है। जिससे ग्रामीण रिति–रिवाज एवं ग्रामीण धर्म सर्वाधिक प्रभावित हुआ है।

मुख्य शब्द– परम्परागत, कार्य–शैली, आधार–स्तम्भ, सार्वभौमिक, वैश्विक संस्कृति, आधुनिकीकरण, प्रौद्योगिकी ज्ञान, लक्षित, पुनर्जन्म, मानवतावाद।

ग्रामीण सामाजिक संरचना एवं जीवन शैली को समझने के लिए सर्व प्रथम ग्रामीण रीति–रिवाज एवं धर्म को समझना अति आवश्यक होता है, क्योंकि रीति–रिवाज एवं धर्म किसी समुदाय का आधार स्तम्भ होते है। ''मानव समाज में धर्म इतना सार्वभौमिक, स्थायी एवं व्यापक है कि धर्म को स्पष्ट रूप से समझे बिना हम समाज को नही समझ सकते है। ''1 बिना इन्हें समझे सम्पूर्ण समुदाय को समझना असंभव है। परम्परागत ग्रामीण समाज जो धर्म एवं रीति–रिवाजों तथां परम्पराओं को अपना केन्द्र बिन्दु मानकर संचालित होता था। वह वर्तमान समय में, कही न कही आधुनिकीकरण, वैज्ञानिकीकरण, औद्योगिकीकरण एवं नगरीय संस्कृति तथा शहरी करण के प्रभाव से पथ–विचलित सा होता प्रतीत हो रहा है। यह सरल समाज वैष्विक संस्कृति एवं नगरीय चकाचौंध के आगोस में समाहित होकर अपनी परम्पराओं, मूल्यों, रीति–रिवाजों एवं धार्मिक क्रिया कलापों तथा पवित्रता से दूर भागता दिखायी दे रहा है।

वर्तमान व्यक्ति वादी समाज में सामुदायिक भावना घट रही है।, क्या पाप है क्या पुण्य की अवधारणा में धन का महत्व बढ़ रहा है। वर्तमान समय में दान में भी धर्म के स्थान पर स्वार्थ की भावना परिलक्षित होती है, सहयोग की भावना में तीव्रता से ह्रास होता दिखाई दे रहा है। आज नगरीय संस्कृति के प्रभाव के कारण जहॉ ग्रामीण समाज में सम्मान आयु एवं रिश्तों का होता था वहॉ सम्मान का स्थान आर्थिक होता जा रहा है। हमारे देश में कुछ स्थान धार्मिक नगर के लिए प्रख्यात थे। आज की युवा पीढ़ी उन्हें वहॉ की विशेष मिठाइयों या वहा की किसी प्रसिद्ध वस्तु के लिए जानने लगी है लोग धार्मिक मात्राऍ

धर्म के लिए नही बल्कि मनोरंजन या पर्यटन के लिए करने लगे है। आज ग्रामीण समाज की युवा पीढ़ी यज्ञोपवीत धारण करना एवं चोटी रखना आदि को पिछड़ापन महसूस करती है, तथा मांस मदिरा का सेवन करना प्रगतिशील समाज का उदाहरण सा बन गया है। यह कहीं न कहीं प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से नगरीय अथवा पश्चिमी संस्कृति का प्रभाव ही दिखाई देता है।

''परम्परागत आधारों धर्म, कर्म, पुनर्जन्म वर्ण, आजम, संस्कार एवं जाति आदि के परम्परागत आधार तेजी से परिवर्तित होकर नये मूल्यों व प्रतिमानों को ग्रहण कर भारतीय सामाजिक संरचना को प्रभावित कर रहें है प्रौद्योगिकी ज्ञान, शिक्षा, संचार एवं गति शीलता के केन्द्र के रूप में नगर, नगरीकरण एवं नगरवाद की प्रक्रिया ने व्यापक रूप से भारतीय सामाजिक संस्थाओं एवं प्रतिमानों को प्रभावित किया है जिसका प्रभाव ग्रामीण क्षेत्रों भी लक्षित हो रहा है।''2

''ग्रामीण समाज की संरचना, व्यवस्था, संगठन, संस्थाए आदि अपने मूल स्वरूप से हटती जा रही है। इसका मुख्य कारण नगरीय सभ्यता और भौतिक संस्कृति का प्रवेश तीव्रता से ग्रामीण समाज में हो रहा है। औद्योगीकरण और नगर की प्रगतिशील सभ्यता और संस्कृति का गहरा प्रभाव ग्रामीण समाज पर पड़ा है। वास्तविकता तो यह है कि नगर गॉवों में प्रवेश कर गये है। इन सभी चीजों का प्रभाव ग्रामीण धर्म पर पड़ा है। 3

आज ग्रामीण रीति–रिवाजों एवं धर्म में अनेकों परिवर्तन आ रहे है धार्मिक संकीर्णता समाप्त हो रही है। और उसमे मानवतावाद का प्रवेश हो रहा है, धर्म में अब लौकिक तत्वों का समावेश होने लगा है। लोग अन्धविश्वासों से दूर हो रहें है तथा घिसी–पिटी रूढ़ियों की अवहेलना करने लगे है। जन्म–मृत्यु, विवाह एवं जीवन के अन्य क्षेत्रों में भी शिक्षा के कारण धार्मिक रूढियों को लोग कम महत्व देने लगे है।4 यह कहीं न कही नगरीय संस्कृति एवं आधुनिकीकरण को दर्शाता है।

प्रस्तुत अध्यन में यह जानने का प्रयास किया गया है, कि परम्परागत ग्रामीण रीति–रिवाजों एवं धर्म पर नगरीय संस्कृति कितना प्रभावी है। तथा नगरीय संस्कृति के प्रभाव से ग्रामीण सामाजिक संरचना एवं कार्य–शैली में किस प्रकार परिवर्तन आया है।

शोध प्रारूप –

प्रस्तुत शोध अध्ययन उत्तर प्रदेश के जनपद सुलतानपुर के अखण्ड नगर विकासखण्ड के चार गॉवों से कुल 300 उत्तर दाताओं का चयन दैव निदर्शन विधि से किया गया है। प्राथमिक स्त्रोत के अन्तर्गत साक्षात्कार अनुसूची का प्रयोग कर उत्तर दाताओं से प्रश्नावली के आधार पर जानकारी प्राप्त की गयी तथा द्वितीयक स्रोत के अन्तर्गत सरकारी ऑकड़ों का भी संकलन किया गया है।

प्रस्तुत शोध अध्ययन के आधार पर अध्ययन में सम्मिलित उत्तर दाताओं से यह जानकारी प्राप्त करने का प्रयास किया गया है कि परम्परागत ग्रामीण रीति–रिवाजों एवं धर्म पर नगरीय संस्कृति का क्या प्रभाव पड़ा है। प्रश्न के सारणी संख्या 1 में इस प्रकार दर्शाये गये है।

सारणी सं0 – 01

परम्परागत ग्रामीण रीति–रिवाजों एवं धर्म पर नगरीय संस्कृति का प्रभाव –

क्र0सं0	प्रभाव के प्रति आवृत्ति	उत्तरदाताओं की संख्या बनवहा सिरखिनपुर		उत्तरदाताओं की संख्या जगदीशपुर		उत्तरदाताओं की संख्या बड़ोरा ख्वाजापुर		उत्तरदाताओं की संख्या पारावासूपुर		सम्पूर्ण योग
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1	हॉ	60	80	62	82.87	55	73.33	58	77.33	235
2	नही	12	16	08	10.7	14	18.7	13	17.33	47

3	कह नही सकते	03	04	05	6.7	06	8	04	5.33	18
	योग	75	100	75	100	75	100	75		300

प्रस्तुत तालिका सं0 – 1 के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि परम्परागत ग्रामीण रीति–रिवाजों एवं धर्म पर नगरीय संस्कृति का प्रभाव स्वीकार करने वाले उत्तर दाताओं की कुल संख्या 235 (78.33 प्रतिशत) तथा नही कहने वाले उत्तर दाताओं की कुल संख्या 47 (15.67 प्रतिशत) है। जबकि कुछ कह नही सकते है कहने वाले उत्तर दाताओं की कुल संख्या 18 (6 प्रतिशत) ही है। इस प्रकार हम कह सकते है, कि वर्तमान समय में परम्परागत ग्रामीण रीति–रिवाजों एवं धर्म को नगरीय संस्कृति ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अवश्य ही प्रभावित किया है।

अतः अध्ययन में सम्मिलित उत्तर दाताओं से जानने का प्रयास किया गया है कि वे धर्म के आधार पर शाकाहार, मांशाहार एवं सर्वाहार के बारे में क्या विचार है तथा वे क्या पसन्द करते है –

सारणी सं0 – 02

ग्रामीणों के भोजन सम्बन्धी विचार एवं पसन्द

क्र0 सं0	**भोजन पसन्द की आवृत्ति**	**उत्तरदाताओं की संख्या बनवहा सिरखिनपुर**		**उत्तरदाताओं की संख्या जगदीशपुर**		**उत्तरदाताओं की संख्या बड़ोरा ख्वाजापुर**		**उत्तरदाताओं की संख्या पारावासूपुर**		**सम्पूर्ण योग**
		संख्या	**प्रतिशत**	**संख्या**	**प्रतिशत**	**संख्या**	**प्रतिशत**	**संख्या**	**प्रतिशत**	
1	**शाकाहार**	18	24	24	32	23	30.7	21	28	86
2	**मांशाहार**	22	32	23	30.7	21	28	21	28	87
3	**सर्वाहार**	35	46.7	28	37.33	31	41.33	33	44	127
	योग	75	100	75	100	75	100	75	100	300

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट होता है कि ग्रामीणों के भोजन सम्बन्धी विचारों एवं पसन्द में ग्रामीण धर्म पर कितना प्रभाव पड़ा है। जो आकड़े प्राप्त हुए है उनमें से कुल 86 (28.67 प्रतिशत) शाकाहार , 87 (29 प्रतिशत) मांशाहार को सर्वाधिक 127 (42.33 प्रतिशत) सर्वाहार को पसन्द करते है। जिससे यह सिद्ध होता है कि परम्परागत ग्रामीण रीति–रिवाज एवं धार्मिक विचारों का ह्रास हो रहा है, नगरीय संस्कृति के प्रभाव से लोग ग्रामीण धर्म को छोड़कर मांस–मदिरा की तरफ अधिक आकर्षित हो रहे है।

अतः अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदाताओं से जानने का प्रयास किया गया कि क्या वे इहलोक और परलोक में विश्वास करते है –

सारणी सं0 – 3
इहलोक और परलोक में विश्वास

क्र0 सं0	इहलोक और परलोक में विश्वास के प्रति आवृत्ति	उत्तरदाताओं की संख्या बनवहा सिरखिनपुर		उत्तरदाताओं की संख्या जगदीशपुर		उत्तरदाताओं की संख्या बड़ोरा ख्वाजापुर		उत्तरदाताओं की संख्या पारावासूपुर		सम्पूर्ण योग
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1	हॉ	38	50.67	40	53.33	37	49.33	37	49.33	152
2	नही	26	34.67	25	33.33	31	41.33	32	42.67	114
3	कह नही सकते	11	14.67	10	13.33	07	9.33	06	8	34
	योग	75	100	75	100	75	100	75	100	300

उपरोक्त सारणी के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि इहलोक और परलोक में विश्वास करने वाले उत्तरदाताओं में से 152 (50.66 प्रतिशत) उत्तरदाता विश्वास करते है एवं 114 (38 प्रतिशत) उत्तरदाता नही करते है जबकि 34 (11.33 प्रतिशत) उत्तरदाताओं का जवाब कह नही सकते रहा है। इस प्रकार अध्ययन से स्पष्ट हो रहा है कि वर्तमान में ग्रामीण समुदाय में परलोक के विश्वास में कमी आयी है। जिसमें कही न कही नगरीय संस्कृति और विज्ञान की प्रगति का प्रभाव परिलक्षित होता है।

अतः अध्ययन में सम्मिलित उत्तरदाताओं से जानने का प्रयास किया गया कि कर्म एवं पुनर्जन्म में विश्वास रखते है या नही।

तालिका सं0 – 4
कर्म एवं पुनर्जन्म में विश्वास

क्र0 सं0	कर्म एवं पुनर्जन्म में विश्वास के प्रति आवृत्ति	उत्तरदाताओं की संख्या बनवहा सिरखिनपुर		उत्तरदाताओं की संख्या जगदीशपुर		उत्तरदाताओं की संख्या बड़ोरा ख्वाजापुर		उत्तरदाताओं की संख्या पारावासूपुर		सम्पूर्ण योग
		संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	संख्या	प्रतिशत	
1	विश्वास है	34	45.33	30	40	32	42.67	38	50.67	134
2	विश्वास नही है	28	37.33	27	36	29	38.67	28	33.33	109
3	थोड़ा बहुत विश्वास करते है	13	17.33	18	24	14	18.67	12	16	57
	योग	75	100	75	100	75	100	75	100	300

सारणी सं0 4 से स्पष्ट है कि 134 (46.7 प्रतिशत) उत्तरदाताओं कर्म एवं पुनर्जन्म में विश्वास रखते है एवं 109 (36.33 प्रतिशत) उत्तरदाताओं का विश्वास कर्म और पुनर्जन्म में नही है तथा 57 (19 प्रतिशत) उत्तरदाता थोड़ा बहुत विश्वास करते है, इससे यह स्पष्ट होता है कि पूर्ण विश्वास करने वाले उत्तरदाताओं

का प्रतिशत आधे से भी कम है जो कही न कही नगरीय संस्कृति तथा आधुनिकीकरण का प्रभाव परिलक्षित होता है।

निष्कर्ष –

इस प्रकार निष्कर्ष के रूप में हम सकते है कि परम्परागत ग्रामीण रीति–रिवाजों एवं धर्म पर नगरीय संस्कृति का प्रभाव अवश्य ही पड़ा है ग्रामीण समुदाय अपनी मूल परम्पराओं एवं धार्मिक रीति–रिवाजों में नगरीय संस्कृति को अपना रहा है। जिससे ग्रामीणों में व्याप्त भाग्यवादिता, में कमी के साथ–साथ अनेक रूढियों एवं अन्ध विश्वासों में कमी आयी है। और विज्ञान के प्रति रूचि बढ़ी है। जिसका श्रेय प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से नगरीय संस्कृति को ही जाता दिखाई देता है।

सन्दर्भ सूची –

1. Devis, Kingsley,Human society. P. 509.
2. सिंह, डॉ0 शिव भानु (2008), समाज दर्शन का सर्वेक्षण, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पृ0–318
3. सिंह, बी0एन0 एवं सिंह जनमेजय (2019), ग्रामीण समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, ज्वाहर नगर दिल्ली – 7 – पृ0–228
4. लवानिया, एम0एम0 एवं जैन शशी के0, ग्रामीण समाजशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, पृ0–273

The Opinion V.10, N. 20 J-D 2021 **ISSN. 2277-9124**
Peer Reviewed Journal

माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों के अध्ययन आदतों पर लॉकडाउन के प्रभाव का अध्ययन

डॉ0 रमेन्द्र कुमार सिंह
मनोविज्ञान विभाग,
महाराजा कॉलेज,
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय,
आरा, बिहार

निशा पटेल
पी.एच.डी.
मनोविज्ञान विभाग,
वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय,
आरा, बिहार

सार (Abtract) -

मनुष्य पूरे जीवन–काल में कुछ–न–कुछ सीखता रहता है, इसी कारण शिक्षा को जीवन पर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया भी कहते है । शिक्षा के द्वारा मनुष्य में आत्म विश्वास की बढ़ोतरी होती है, जिससे मनुष्य समाज के हर क्षेत्र में खुद को सहज महसूस करता है । मनुष्य के जीवन में आदतों का विशेष स्थान होता है । मनुष्य की आदतें ही उनकी सफलता और विफलता का कारण बनती है। मनुष्य की अच्छी आदतें उन्हें सफलता की ओर बढ़ने में मदद करती है तो वहीं गलत आदतें उन्हें विफलता और कुमार्ग की ओर ढकेलती है । अतः किसी भी देश या समाज के सभ्य विकास के लिए देश के भावी कर्णधार अर्थात बालक बालिकाओं के अध्ययन आदतों को परखना अति आवश्यक है । प्रस्तुत शोध इन्हीं बातों को ध्यान में रख किया गया, जिसमें बिहार के आरा शहर के विद्यालयों में अध्ययनरत माध्यमिक कक्षा के (100) विद्यार्थियों को शामिल कर उनके द्वारा प्राप्त डेटा का विश्लेषण कर निष्कर्ष निकाला गया । निष्कर्ष में पाया गया कि लॉकडाउन का प्रभाव विद्यार्थियों के अध्ययन आदतों पर पड़ा है ।

प्रस्तावना (Introduction) -

शिक्षा समाज में बदलाव लाते है। किसी भी देष के बच्चे आने वाले कल के भविष्य होते है। अतः यदि कोई देष अपने आने वाले भविष्य में अपने देश को उन्नत तथा विकसित देखना चाहते है तो उसे अपने देष के बच्चों पर विशेष ध्यान देना होगा । जब बच्चों का विकास सही रूप से होगा, तब ही तो एक स्वस्थ और सभ्य समाज का निर्माण होगा। अतः इसके लिए यह अति आवश्यक है कि हम अपने भावी कर्णधार पर विशेष ध्यान केन्द्रित करें ।

आज जहाँ पूरा विश्व चीन से फैले नोबेल कोरोना वायरस से तबाह है। देश में आपातकालीन की स्थिति बनी हुई है । देश में यह स्थिति (2019–2020) से ही लगातार बनी हुई है। सभी तरह की गतिविधियों पर रोक लगा दी गई है। इस वायरस ने तो लोगों की जीवन जीने के तरीके को ही बदल डाला है। आज लगभग हर तरह के कार्य डिजिटल माध्यम के द्वारा करने पर जोर दिया जा रहा है। स्कूल, कॉलेज तथा अन्य सभी प्रकार के शिक्षण संस्थान आदि भी डिजिटल माध्यम से ही शिक्षा देने का कार्य कर रहे है। जहॉ कुछ समय पहले तक शिक्षक, अभिभावक बच्चों को इलेक्ट्रॉनिक मीडिया, इंटरनेट, गजेट्स आदि का इस्तेमाल कम या न करने की सलाह देते थे। वहीं आज वे उन्हीं माध्यमों का सहारा लेने को मजबूर है। आज बच्चें इन उपकरणों का प्रयोग अधिक और लंबे समय तक कर रहे है। विद्यार्थियों पर शिक्षण प्रणाली का विशेष प्रभाव पड़ता है। प्रस्तुत अध्ययन में शोधार्थी ने विधार्थियों के अध्ययन आदतों को जानने का प्रयास किया, ताकि भविष्य में उनके अनुरूप शिक्षण पद्धति का विकास किया जा सकें तथा उचित शैक्षिक निर्देशन दिया जा सकें।

औचित्य (Need of Research) -

विद्यार्थियों की अध्ययन संबंधी आदतों पर शिक्षण प्रणाली का विशेष प्रभाव पड़ता है। साथ ही पारिवारिक वातावरण, विद्यालय का माहौल, शिक्षण मार्गदर्शन, अभिभावकों का मार्गदर्शन भी उनके शिक्षण आदतों को प्रभावित करते है। विद्यार्थियों के लिए माध्यमिक शिक्षा उनके जीवन का महत्वपूर्ण काल है। माध्यमिक कक्षा के विधार्थी किशोरावस्था की दहलीज पर खड़े होते है और व्यवहार संबंधी परिवर्तनों का समय होता है। इस समय बच्चे अपनी एक अलग पहचान बनाने की कोशिष करते है। वे स्वतंत्र रहना ज्यादा पसंद करते है। किशोरावस्था एक संवेदनषील अवधि होने के साथ ही व्यक्ति के जीवन का 'निर्णायक मोड़' भी होता है। माध्यमिक शिक्षा, शिक्षा का केन्द्रिय स्तर होता है और माध्यमिक शिक्षा की सुदृढ़ता पर ही राष्ट्र का विकास संभव है।

डॉ0 आत्मानंद मिश्रा के अनुसार ''देश के भावी कर्णधार माध्यमिक शिक्षा के ही ढाँचें में बनते और बिगड़ते है। सभी क्षेत्रों में नेतृत्व करने की क्षमता इसी स्तर पर उत्पन्न की जाती है।''

विद्यार्थी के लिए माध्यमिक शिक्षा उसके जीवन का महत्वपूर्ण काल है। हाई स्कूल स्तर के विद्यार्थियों में ही अध्ययन संबंधी आदतों का निर्माण होता है। अध्ययन की अच्छी आदतें ही विद्यार्थियों में एक अच्छे चरित्र और एक खास व्यक्तित्व का निर्माण करती है। अध्ययन आदतें ही विधार्थियों के जीवन को संगठित, अनुशासित एवं सरल बना देते है। विद्यालय में विद्यार्थियों के मानसिक विकास के साथ शारीरिक, सांस्कृतिक और व्यवसायिक विकास में सहायता प्रदान करते है, जो विद्यार्थियों से सर्वागिण विकास के लिए आवष्यक है।

छात्र–छात्राओं के अध्ययन संबंधी आदतों का उनकी आने वाले भविष्य एवं सफलताओं से सहसंबंधित होता है। विद्यार्थियों जहाँ छः से आठ घंटे शिक्षक एवं गुरूजनों के सर्म्पक में और सोलह (16) से अठ्ारह घंटे (18) अभिभावक के संग बिताते है, जिस कारण हम कह सकते है कि विद्यार्थियों के भविष्य निर्माण में शिक्षक और परिवार दोनों का ही योगदान होता है। यदि विद्यार्थियों का भविष्य उज्जवल होगा, तब ही हमारे परिवार, समाज और देष का विकास संभव है। वर्तमान समय में यह जानना अतिआवश्यक हो गया है कि हमारे देश की युवा पीढ़ी अपनी उर्जा शिक्षा के सकारात्मक कार्यो में लगा पा रही है या नहीं । वर्तमान समय में उनकी अध्ययन आदतें कैसी है ?

आज देश आपातकाल प्रोटोकॉल से गुजर रहा है और लंबे समय से विद्यार्थियों का अपने शिक्षकों, मित्रों आदि से उनका संपर्क डिजिटल माध्यम से हो रहे थे, जिसमें शिक्षक और छात्र–छात्राएँ दोनों ही अपने कार्य को पूर्ण रूप से पूरा कर पाने में असमर्थ महसूस कर रहे थे। छात्र और शिक्षक का सीधा संपर्क न होने की वजह से अनुशासन संबंधी समस्याएँ आज विशेष रूप से उत्पन्न हो रही है।

अतः एक अध्यापक, अभिभावक, समाज तथा स्वयं विद्यार्थियों का इसका ज्ञान होना चाहिए कि उनकी शैक्षिक आदतें कैसी है ? ताकि सही समय पर उनको उचित निर्देशन दिया जा सके तथा उचित शिक्षण विधियों का प्रयोग कर उनका निदान किया जा सकें । अतः इन्ही बातों को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी ने इस समस्या का चयन किया ।

समस्या कथन (Research Problem) -

''माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों के अध्ययन आदतों पर लॉकडाउन के प्रभाव का अध्ययन ।''

साहित्य सर्वेक्षण (Literature Survey) -

- प्रमोद आमेटा, उदयपुर, राजस्थान (2018) ने ''माध्यमिक स्तर पर उच्च एवं निम्न उपलब्धि वाले विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें का एक तुलनात्मक अध्ययन'' किया और पाया कि उच्च उपलब्धि व निम्न उपलब्धि प्राप्त विद्यार्थियों के अध्ययन आदतों में सार्थक अंतर है ।

- मधु वसीटा (2010–2011) ने ''राजकीय एवं निजी माध्यमिक विद्यालय की गार्गी पुरस्कार प्राप्त छात्राएँ एवं सामान्य छात्राओं की अध्ययन आदतों का अध्ययन किया ।
- डॉ बलिदान जैन, उदयपुर, राजस्थान ने उच्च सामाजिक आर्थिक पृठभूमि वाले विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें तथा शैक्षिक उपलब्धि में सह संबंध का अध्ययन किया और पाया कि निम्न सामाजिक, आर्थिक पृठभूमि वाले विद्यार्थियों की अध्ययन आदतें कम अच्छी होने से उनकी शैक्षिक उपलब्धि भी कम रही है।

शोध उद्देश्य (Research Objective) -

- विद्यार्थियों के अध्ययन आदतों को जानने हेतु ।
- छात्रों के अध्ययन आदतों को जानने हेतु ।
- छात्राओं की अध्ययन आदतों को जानने हेतु ।
- वर्त्तमान समय के अनुसार माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत विद्यार्थियों के अध्ययन आदतों को जानने हेतु।

शोध परिकल्पनाएँ (Research Hypothesis) -

1. माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की अध्ययनरत आदतों के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं होगा ।
2. माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत छात्रों के अध्ययन आदतों पर लॉकडाउन का कोई सार्थक प्रभाव नहीं होगा।
3. माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत छात्राओं के अध्ययन आदतों पर लॉकडाउन का कोई सार्थक प्रभाव नहीं होगा ।

शोध प्रणाली (Research Methodology) -

- **शोध विधि (Research Method)**
  प्रस्तुत अध्ययन एक एक्स पोस्ट फैक्टो षोध है जो एक अप्रयोगात्मक षोध है ।
- **न्यायदर्श (Sample)**
  प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने आरा के हिन्दी तथा अँग्रेजी माध्यम में अध्ययनरत माध्यमिक कक्षा के विद्यार्थियों का चयन किया है । कुल विद्यार्थियों की संख्या 100 रखा गया है । चयनित विद्यार्थी कक्षा 9th और 10th के छात्र है । न्यायदर्श का चयन ''यादृच्छिक प्रतिदर्शन'' के आधार पर किया गया है ।
- **शोध उपकरण (Research Tools)**
  प्रस्तुत शोध में M.Mukhopadhya & D.N. Sansanwall द्वारा निर्मित Students Habbit Inventory का प्रयोग किया गया है । इससे प्राप्त प्राप्तांक का माध्य, मानक विचलन और टी–परीक्षण निकाल कर प्रयोग का निष्कर्ष निकाला गया ।

व्याख्या एवं विश्लेषण (Analysis) –

प्रस्तुत शोध में शोधार्थी ने 100 विद्यार्थियों का डाटा एकत्रित किया, जिनमें से 60 विद्यार्थियों द्वारा दिए गए डाटा ही शोध परीक्षण के लिए उत्तम थे ।

$H_0$1 :- माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन आदतों के बीच कोई सार्थक अन्तर नहीं होगा ।

तालिका – 1

समूह	संख्या	माध्य	मानक विचलण	टी.परीक्षण मान	सार्थकता स्तर		परिणाम
					0.01	0.05	
छात्रा	30	125.33	12.2	4.23	2.392	1.672	अस्वीकृत
छात्र	30	114.66	5.7				

$$df = N_1+N_2-2 = 30+30-2 =58$$

उपरोक्त तालिका 1 छात्राओं एवं छात्रों की अध्ययन आदतों को दर्षाती है । df 58 का टी–परीक्षण सारणी मान की सार्थकता 0.01 एवं 0.05 पर 1.672 एवं 2.392 है जबकि गणना द्वारा प्राप्त टी–परीक्षण मान 4.23 है जो कि सारणी मान से अधिक है । अतः नल परिकल्पना अस्वीकृत की जाती है और इससे यह मालूम पड़ता है कि माध्यमिक कक्षा में अध्ययन छात्र और छात्राओं के अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर है ।

$H_0$2 :- माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत छात्रों के अध्ययन आदतों पर लॉकडाउन का कोई सार्थक प्रभाव नहीं होगा।

तालिका – 2

समूह	संख्या	माध्य	जनसंख्या माध्य	मानक विचलण	टी. परीक्षण मान	सार्थकता स्तर		परिणाम
						0.01	0.05	
छात्र	30	114.66	120	5.87	4.97	2.756	2.045	अस्वीकृत

$$df = N-1, = 30-1 = 29$$

उपरोक्त तालिका–2 छात्रों के अध्ययन आदतों को दर्षाती है । तालिका के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि गणना की गई टी–परीक्षण मान सारणी मान से अधिक है अर्थात् $H_0$2 को अस्वीकृत किया जाता है । अतः माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत छात्रों के अध्ययन आदतों पर लॉकडाउन का सार्थक प्रभाव पड़ा है ।

$H_0$3 :- माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत छात्राओं के अध्ययन आदतों पर लॉकडाउन का कोई सार्थक प्रभाव नहीं होगा ।

तालिका – 3

समूह	संख्या	माध्य	जनसंख्या माध्य	मानक विचलण	टी. परीक्षण मान	सार्थकता स्तर		परिणाम
						0.01	0.05	
छात्रा	30	125.33	120	12.4	2.33	2.756	2.04	अस्वीकृत

$$df = N-1, = 30-1 = 29$$

उपरोक्त तालिका–3 माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत छात्राओं के अध्ययन आदतों को दर्शाती है जहाँ टी–परीक्षण मान 2.33 है, जो कि सार्थकता स्तर 0.05 पर अस्वीकृत की जाती है अर्थात् माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत छात्राओं के अध्ययन आदतों पर लॉकडाउन का सार्थक प्रभाव पड़ा है ।

निष्कर्ष (Canculation) -

- माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत छात्र एवं छात्राओं की अध्ययन आदतों में सार्थक अन्तर देखने को मिले ।
- छात्राओं की अध्ययन आदतें छात्रों से अच्छी पायी गई ।
- माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत छात्रों के अध्ययन आदतों पर लॉकडाउन के प्रभाव सार्थक रूप से पाया गया ।
- माध्यमिक कक्षा में अध्ययनरत छात्राओं के अध्ययन आदतों पर भी लॉकडाउन का सार्थक प्रभाव पाया गया।

संदर्भ ग्रन्थ सूची (Reference) -

- गांगुली, मालविका (1992) : 'शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों के विद्यार्थियों के विद्यालय वातावरण के कारकों का अध्ययन'' फिफ्थ सर्वे ऑफ एज्यूकेशनल रिसर्च, 1998–92
- सिंह, बलवान :''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के विद्यालय वातावरण, शैक्षिक निश्पति एवं समायोजन का अध्ययन'' श्रृखंला एक शोधपरक वैचारिक पत्रिका, 2019
- शर्मा, डॉ बी. एन. (2003) : शिक्षा मनोविज्ञान'', साहित्य प्रकाशन, आगरा ।
- सिंह, अरूण कुमार (2013) : ''शिक्षा मनोविज्ञान'' मोती लाल बनारसी दास पब्लिकेशन, नई दिल्ली
- बुच, एम. बी. (1978–1983) : सर्वे ऑफ रिसर्च इन एज्यूकेशन NCERT, नई दिल्ली ।
- आमेटा, प्रमोद उदयपुर (2018) :''माध्यमिक स्तर पर उच्च एवं निम्न उपलब्धि वाले विद्यार्थियों की अध्ययन आदतों का तुलनात्मक अध्ययन, राजस्थान ।